## 1.1 उद्देश्य :

इस इकाई–1 के अन्तर्गत राजनीतिक समाजशास्त्र से संबंधित निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की जा रही है जो ज्ञान वृद्धि में सहायक होगी।

- राजनीतिक समाजशास्त्र की परिभाषा
- राजनीतिक समाजशास्त्र की विषयवस्तु।
- राजनीतिक समाजशास्त्र के विविध विशेष उपागमों की चर्चा।
- आदर्शात्मक उपागम, संरचनात्मक प्रकार्यवादी उपागम, व्यवहारवादी
- उपागम व व्यवस्थात्मक व संघर्षात्मक उपागम।
- समाज व राजनीतिक व्यवस्था के बीच अन्तर्सम्बन्ध की विधिवत्
- चर्चा।

इस प्रकार निम्न बिन्दुओं पर चर्चा के द्वारा हम सभी उपर्युक्त महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

## 1.1 प्रस्तावना :

इस इकाई में राजनीतिक समाजशास्त्र के कतिपय बिन्दुओं की क्रमबद्ध चर्चायें की जा रही है। बिन्दु 1.3 के अन्तर्गत राजनीतिक समाजशास्त्र की परिभाषा, क्षेत्र, व विषय वस्तु पर प्रकाश डाला जायेगा। इसी इकाई के अन्तर्गत राजनीतिक समाजशास्त्र के विविध उपागमों यथा आदर्शात्मक उपागम, संरचनात्मक उपागम, प्रकार्यवादी उपागम, व्यवहारवादी उपागम आदि की विधिवत् विवेचना की जा रही है। अंत में राजनीतिक व्यवस्था व समाज के अन्तर्सम्बन्धों की चर्चा होगी। इसके बाद बोध प्रश्नों को दिया गया है। हम सभी इस अध्ययन के द्वारा राजनीतिक समाजशास्त्र को सरलता से समझने में सक्षम हो सकेगे।

## 1.2 राजनीतिक समाजशास्त्र : अर्थ, परिभाषा, विषय वस्तु, क्षेत्र एवं प्रकृति

19वीं शताब्दी में राज्य और समाज के आपसी सम्बन्ध पर वाद–विवाद शुरू हुआ तथा 20वीं शताब्दी में, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सामाजिक विज्ञानों में विभिन्नीकरण और विशिष्टीकरण की उदित प्रवृत्ति तथा राजनीति विज्ञान में व्यवहारवादी क्रान्ति और अन्तः अनुशासनात्मक उपागम के बढ़े हुए महत्व के परिणामस्वरूप जर्मन और अमरीकी विद्वानों में राजनीतिक विज्ञान के समाजोन्मुख अध्ययन की एक नूतन प्रवृत्ति शुरू हुई। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप राजनीतिक समस्याओं की समाजशास्त्रीय खोज एवं जांच की जाने लगी। ये खोजें एवं जांच न तो पूर्ण रूप से समाजशास्त्रीय थीं और न ही पूर्णतः राजनीतिक। अतः ऐसे अध्ययनों को 'राजनीतिक समाजशास्त्र' के नाम से पुकारा जाने लगा।

एक स्वतन्त्र और स्वायत्त अनुशासन के रूप में 'राजनीतिक समाजशास्त्र' का उद्भव और अध्ययन–अध्यापन एक नूतन घटना है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद फेंज न्यूमा, सिमण्ड न्यूमा, हेन्स गर्थ, होरोविज, जेनोविटस, सी.राइट मिल्स, ग्रियर ओरलिन्स, रोज, मेकेन्जी, लिपसेट जैसे विद्वानों और चिन्तकों की रचनाओं में 'राजनीतिक समाजशास्त्र' ने एक विशिष्ट अनुशासन के रूप में लोकप्रियता अर्जित की है। लेकिन आज भी यह विषय अपनी बाल्यावस्था में ही है। इसकी बाल्यावस्था के कारण ही विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में राजनीतिक समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अध्ययन–अध्यापन हेतु किन–किन टॉपिक्स को शामिल किया जाये और किन–किन क्षेत्रों की गवेषणा की जाये इस बात को लेकर विद्वानों और लेखकों में गम्भीर मतभेद हैं। यहां तक कि इस विषय के नामकरण के बारे में भी आम सहमति नहीं पायी जाती है। कतिपय विद्वान इसे 'राजनीतिक समाजशास्त्र' (Political Sociology) कहकर पुकारते हैं जबकि अन्य विद्वान इसे 'राजनीति का समाजशास्त्र' (Sociology of Politics) कहना पसन्द करते



Scanned with CamScanner

हैं। एस. एन. **आइसेन्सटेड** इसे 'राजनीतिक प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन' (Sociological study of Political Processes and Political Systems) कहकर पुकारते हैं। 'राजनीतिक समाजशस्त्र' वस्तुतः समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के बीच विद्यमान सम्बन्धों की घनिष्ठता का सूचक है। इस विषय की व्याख्या समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री अपने–अपने ढंग से करते हैं। जहां समाजवादी के लिए यह समाजशास्त्र की एक शाखा है, जिसका सम्बन्ध समाज के अन्दर या मध्य में निर्दिष्ट शक्ति के कारणों एवं परिणामों तथा उन सामाजिक और राजनीतिक द्वन्द्वों से है जो कि सत्ता या शक्ति में परिवर्तन लाते हैं; राजनीतिशास्त्री के लिए यह राजनीतिशास्त्र की शाखा है जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज व्यवस्था के बजाय राजनीतिक उपव्यवस्था को प्रभावित करने वाले अन्तःसम्बन्धों से है। ये अन्तःसम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था तथा समाज की दूसरी उपव्यवस्थाओं के बीच में होते हैं। राजनीतिशास्त्री की रूचि राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या करने वाले सामाजिक परिवर्त्यों तक रहती है जबकि समाजशास्त्री समस्त सम्बन्धी घटनाओं को देखता है।

एक नया विषय होने के कारण 'राजनीतिक समाजशास्त्र' की परिभाषा करना थोड़ा कठिन है। राजनीतिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम सामाजिक जीवन के राजनीतिक एवं सामाजिक पहलुओं के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण करते हैं; अर्थात् राजनीतिक कारकों तथा सामाजिक कारकों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा इनके एक–दूसरे पर प्रभाव एवं प्रतिच्छेदन का अध्ययन करते हैं।

'राजनीतिक समाजशास्त्र' की निम्नलिखित परिभाषाएं की जाती हैं :

**'डाउसे** तथा **ह्यूज** : "राजनीतिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा है जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से राजनीति और समाज में अन्तःक्रिया का विश्लेषण करना है।"

**जेनोविट्सः** "व्यापकतर अर्थ में राजनीतिक समाजशास्त्र समाज के सभी संस्थागत पहलुओं की शक्ति के सामाजिक आधार से सम्बन्धित है। इस परम्परा में राजनीतिक समाजशास्त्र स्तरीकरण के प्रतिमानों तथा संगठित राजनीति में इसके परिणामों का अध्ययन करता है।"

**लिपसेट** : "राजनीतिक समाजशास्त्र को समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के तथा सामाजिक संरचनाओं एवं राजनीतिक संस्थाओं के पारस्परिक अन्तःसम्बन्धों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

**बेंडिक्स** : "राजनीति विज्ञान राज्य से प्रारम्भ होता है और इस बात की जांच करता है कि यह समाज को कैसे प्रभावित करता है। राजनीतिक समाजशास्त्र समाज से प्रारम्भ होता है और इस बात की जांच करता है कि वह राज्य को कैसे प्रभावित करता है।"

**पोपीनों** : "राजनीतिक समाजशास्त्र में वृहत् सामाजिक संरचना तथा समाज की राजनीतिक संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।"

**सारटोरी** : "राजनीतिक समाजशास्त्र एक अन्तःशास्त्रीय मिश्रण है जो कि सामाजिक तथा राजनीतिक चरों को अर्थात् समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित निर्गमनों को राजनीतिशास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित निर्गमनों से जोड़ने का प्रयास करता है। यद्यपि राजनीतिक समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र को आपस से जोड़ने वाले पुलों में से एक है, फिर भी इसे 'राजनीति के समाजशास्त्र' का पर्यायवाची नहीं समझा जाना चाहिए।"

**लेविस कोजर** : "राजनीतिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध सामाजिक कारकों तथा तात्कालिक समाज में शक्ति वितरण से है। इसका सम्बन्ध सामाजिक और राजनीतिक संघर्षो से है जो शक्ति वितरण में परिवर्तन का सूचक है।"



Scanned with CamScanner

**टॉम बोटामोरः** "राजनीतिक समाजशास्त्र का सरोकर सामाजिक सन्दर्भ में सत्ता (Power) से है। यहां सत्ता का अर्थ है एक व्यक्ति या सामाजिक समूह द्वारा कार्यवाही करने, निर्णय करने व उन्हें कार्यान्वित करने और मोटे तौर पर निर्णय करने के कार्यक्रम को निर्धारित करने की क्षमता जो यदि आवश्यक हो तो अन्य व्यक्तियों और समूहों के हितों और विरोध में भी प्रयुक्त हो सकती है।"

राजनीति विज्ञान के परम्परावादी विद्वान अपने अध्ययन विषय का सम्बन्ध 'राज्य' और 'सरकार' जैसी औपचारिक संस्थाओं से जोड़ते थे। राजनीति विज्ञान में व्यवहारवादी क्रान्ति के परिणामस्वरूप 'राजनीति' शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार, हित समूहों की क्रियाओं तथा विभिन्न हित समूहों में संघर्ष के समाधान के लिए किया जाने लगा। डेविड ईस्टन ने इसे 'किसी समाज में मूल्यों के प्राधिकारिक वितरण से सम्बन्धित क्रिया कहा है।' संक्षेप में, राजनीति के अध्ययन से अभिप्राय केवल राज्य और सरकार की औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन करना ही नहीं अपितु यह एक सामाजिक क्रिया है क्योंकि सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों में राजनीति पायी जाती है।

निष्कर्षतः राजनीतिक समाजशास्त्र का उपागम सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों को समान महत्व देने के कारण, समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र दोनों से भिन्न है तथा इसलिए यह एक पृथक् सामाजिक विज्ञान है। प्रो.आर.टी. जनगम के अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र को समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के अन्तःउर्वरक की उपज माना जा सकता है जो राजनीति को सामाजिक रूप में प्रेक्षण करते हुए, राजनीति पर समाज के प्रभाव तथा समाज पर राजनीति के प्रभाव का अध्ययन करता है।

संक्षेप, में राजनीतिक समाजशास्त्र समाज के सामाजिक आर्थिक पर्यावरण से उत्पन्न तनावों और संघर्षो का अध्ययन कराने वाला विषय है। राजनीति विज्ञान की भांति राजनीतिक समाजशास्त्र समाज में शक्ति सम्बन्धों के वितरण तथा शक्ति विभाजन का अध्ययन हैं इस दृष्टि से कतिपय विद्वान इसे राजनीति विज्ञान का उप–विषय भी कहते है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने से 'राजनीतिक समाजशास्त्र' की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं– (1) राजनीतिक समाजशास्त्र राजनीति विज्ञान नहीं है क्योंकि इसमें मात्र राज्य और सरकार की औपचारिक संरचनाओं का अध्ययन नहीं होता। (2) यह समाजशास्त्र भी नहीं है क्योंकि इसमें मात्र सामाजिक संस्थाओं का ही अध्ययन नहीं किया जाता। (3) इसमें राजनीति का समाजशास्त्रीय परिवेश में अध्ययन किया जाता है। (4) इसमें राजनीतिक समस्याओं को आर्थिक और सामाजिक परिवेश में देखा जाता है। (5) इसकी विषय–वस्तु और कार्यपद्धति को समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र, दोनों विषयों से लिया जाता है।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राजनीतिक समाजशास्त्र' राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र दोनों के गुणों को अपने में समाविष्ट करते हुए यह दोनों का अधिक विकसित रूप में प्रतिनिधित्व करता है। एस.एस. लिपसेट इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं : "यदि समाज–व्यवस्था का स्थायित्व समाजशास्त्र की केन्द्रीय समस्या है तो राजनीतिक व्यवस्था का स्थायित्व अथवा जनतन्त्र की सामाजिक परिस्थिति राजनीतिक समाजशास्त्र की मुख्य चिन्ता है।

## राजनीतिक समाजशास्त्र की विषय–वस्त् :

किसी भी विषय की विषय–वस्तु निर्धारित करना कठिन कार्य है। यह कठिनाई राजनीतिक समाजशास्त्र जैसे नवीन विषय में, जोकि अभी तक अपनी शैशवावस्था में है और भी अधिक है। फिर भी राजनीतिक समाजशास्त्र की परिभाषाओं से इसके अन्तर्गत अध्येय पहलुओं का पता चलता है। लिपसेट के अनुसार अगर समाजशास्त्र की दिलचस्पी का मुख्य विषय समाज का स्थायित्व है तो राजनीतिक समाजशास्त्र मुख्य रूप से एक विशिष्ट संस्थागत संरचना अर्थात् राजनीतिक शासन (Political regime) से सम्बद्ध है।



Scanned with CamSc

बैनडिक्स तथा लिपसेट ने राजनीतिक समाजशास्त्र की विषय–वस्तु में निम्नलिखित पहलुओं को सम्मिलित किया है :

1. समुदायों तथा राष्ट्रों में मतदान व्यवहार (मतदान का व्यवहारात्मक अध्ययन);
2. आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण तथा राजनीतिक निर्णयन कार्य;
3. राजनीतिक आन्दोलनों तथा हित–समूहों की विचारधाराएँ;
4. राजनीतिक दल, ऐच्छिक समितियाँ, अल्पतन्त्र की समस्याएँ तथा राजनीतिक व्यवहार के मनोवैज्ञानिक सहसम्बन्ध; तथा
5. सरकार एवं अधिकारीतन्त्र की समस्याएँ।

ग्रीर तथा ऑरलियन्स ने राजनीतिक समाजशास्त्र की विषय–वस्तु में (1) राज्य की संरचना, (2) वैधता की प्रकृति एवं दशाएँ, (3) शक्ति पर एकाधिकार तथा राज्य द्वारा इसका प्रयोग, तथा (4) उप–इकाइयों की प्रकृति एवं इनके राज्य से विवाद को सम्मिलित किया है। इनके अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र में अनुसंधान तथा सिद्धान्त की कार्य–सूची में मतैक्य एवं वैधता, सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व तथा आर्थिक विकास एवं राजनीतिक परिवर्तन के सम्बन्ध को सम्मिलित किया जा सकता है।

## 1.2.2 राजनीतिक समाजशास्त्र : विषय–क्षेत्र, अभ्युदय के कारण एवं प्रकृति

**विषय क्षेत्र** : राजनीतिक समाजशास्त्र एक नया विषय है और फिर यह राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र से सामग्री ग्रहण करता है, इसलिए इसका पृथक् विषय–क्षेत्र निर्धारित करना एक कठिन समस्या है। यदि यह राजनीति विज्ञान की ओर झुकता है तो इसे राजनीति विज्ञान का पर्यायवाची मानने का खतरा है और यदि समाजशास्त्र की ओर झुकता है तो इसे समाज का पर्यायवाची बनने का खतरा है।

**बैनडिक्स तथा लिपसेट** ने राजनीतिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत निम्नलिखित पहलुओं को सम्मिलित किया (1) समुदायों तथा राष्ट्रों में मतदान व्यवहार; (2) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण तथा राजनीतिक निर्णयन कार्य; (3) राजनीतिक आन्दोलनों तथा हित समूहों की विचारधाराएं; (4) राजनीतिक दल, ऐच्छिक समुदाय, अल्पतन्त्र की समस्याएं तथा राजनीतिक व्यवहार के मनोवैज्ञानिक सहसम्बन्ध; (5) राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित अल्पतन्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक सहसम्बन्धों की समस्याएं तथा (6) सरकार एवं नौकरशाही की समस्याएं।

ब**ाविस्कर** ने राजनीतिक समाजशास्त्र की विषय–वस्तु के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों को समाविष्ट करने पर जोर दिया है– (1) राजनीति तथा समाज राजनीति में सामाजिक संस्थाओं की भूमिका; (2) राजनीतिक समुदाय तथा राजनीतिक संरचनाएं जैसे– पंचायतें, राजनीतिक दल, हित समूह, अभिजन, आदि; (3) राजनीतिक प्रक्रियाएं– राजनीतिक समाजीकरण राजनीतिक भर्ती, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक विकास, आदि तथा राजनीतिक इतिहास का समाजशास्त्रीय विश्लेषण।

**मिचेल** ने राजनीतिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत संवैधानिक एवं अनौपचारिक राजनीतिक संस्थाओं, अभिजनों, संघर्ष के आविर्भाव, नियमन, हित समूहों एवं औपचारिक दबाव समूहों, मतदान व्यवहार, राजनीतिक दलों जैसे विविध विषयों के अध्ययन पर बल दिया है।

**ग्रीर** तथा **आरलियन्स**– राजनीतिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत (1) राज्य की संरचना, (2) वैधता की प्रकृति एवं दशाएं, (3) शक्ति पर एकाधिकार तथा राज्य द्वारा इसका प्रयोग, तथा (4) उप–इकाइयों की प्रकृति एवं इनके राज्य से विवाद को सम्मिलित किया है। बाद में इन दोनों विद्वानों ने उपर्युक्त विषयों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जो इस प्रकार हैं: (1) सहमति एवं औचित्य (Consesess and Legitimacy), (2) प्रतिनिधित्व एवं सहभागिता (Representation and Participation), तथा (3)



Scanned with CamScanner

राजनीतिक परिवर्तन एवं आर्थिक प्रगति के बीच सम्बन्ध (Relationship between political change and Economic development)। **ब्रूम** तथा **सैल्जनिक** के अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र मुख्यतः सरकार एवं राजनीति को प्रभावित करने वाली आधारभूत दशाओं से सम्बन्धित है।

**डाउस** तथा **ह्यूज** के अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र के तात्विक सम्बन्ध के क्षेत्र हैं: सामाजिक व्यवस्था की समस्या और राजनीतिक आज्ञाकारिता।

**रिचार्ड जी. ब्रोगार्ट** के अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र गत्यात्मक संघों, राजनीति के सामाजिक स्रोतों, राजनीति की संरचना, राजप्रक्रिया तथा प्रतिवेशी समाज और संस्कृति पर राजनीति के प्रभावों, आदि को अपना अध्ययन विषय बनाता है।

उक्त चर्चित विषयों के अतिरिक्त हम राजनीतिक समाजशास्त्र के व्यापक क्षेत्र में निम्नलिखित प्रकरणों को भी सम्मिलित कर सकते हैं :

(1) राजनीतिक संरचनाएं – सामाजिक वर्ग, जाति, अभिजन, राजनीतिक दल, हित समूह, नौकरशाही, आदि।

(2) राजनीतिक प्रकार्य – राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती, हित समूहीकरण, एकीकरण और अभिनव परिवर्तन, आदि।

(3) राजनीतिक जीवन– चुनवी प्रक्रिया, राजनीतिक संचरण, मताचरण, आदि।

(4) राजनीतिक नेतृत्व– नेतृत्व और राजनीतिक संस्कृति, शक्ति और सत्ता की संरचना, आदि।

(5) राजनीतिक विकास–राजनीतिक विकास की अवधारणा, सामाजिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण और समाजीकरण के साथ इसके सम्बन्ध।

संक्षेप में, राजनीतिक समाजशस्त्र की विषय–वस्तु के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं, राजनीतिक समुदायों, राजनीतिक व्यवहार, प्रभाव, शक्ति एवं सत्ता, राजनीतिक आन्दोलनों एवं विभिन्न राजनीतिक प्रक्रियाओं, अभिजनों, इत्यादि विविध प्रकार के चरों को सम्मिलित किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से 'राजनीतिक समाजशास्त्र' (Political Sociology) की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं :

1. राजनीतिक समाजशास्त्र राजनीतिक और सामाजिक परिवर्त्यों से समान रूप से जुड़ा है और समान रूप से प्रभावित होता है।
2. राजनीतिक समाजशास्त्र राजनीति विज्ञान नहीं है क्योंकि इसमें राजनीति विज्ञान की तरह राज्य और शासन का ही अध्ययन नहीं होता है।
3. राजनीतिक समाजशास्त्र की अभिरूचि राजनीति में है, फिर भी यह राजनीति को परम्परागत दृष्टि से नहीं देखता है।
4. राजनीतिक समाजशास्त्र समाजशास्त्रीय राजनीति भी नहीं है क्योंकि यह समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र दोनों में अभिरूचि रखता है।
5. जहां **राजनीति का समाजशास्त्र** (Sociology of Politics) भारतीय राजनीति का विश्लेषण जातिगत समाज के परिप्रेक्ष्य में करेगा, वहां **भारतीय समाजशास्त्र** इसके साथ इस बात की भी छानबीन करेगा कि किस प्रकार भारतीय राजनीति ने जातियों का राजनीतिकरण किया है।

'राजनीतिक समाजशास्त्र' की मान्यता है कि सामाजिक प्रक्रिया और राजनीतिक प्रक्रिया में अनुरूपता है। इसी सन्दर्भ में राजनीतिक समाजशास्त्री राज्य और समाज के मध्य परम्परागत विवाद का समाधान करना चाहता है। परन्तु ऐसा होने पर भी **'राजनीतिक समाजशास्त्र'** को 'राजनीति का समाजशास्त्र' (Sociology of Politics) नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण है कि 'राजनीति का



Scanned with CamScanner

समाजशास्त्र' राजनीतिक परिवर्त्यों की स्वतन्त्र सत्ता एवं स्वायत्तता को अस्वीकार करता है, जबकि 'राजनीतिक समाजशास्त्र' राजनीतिक परिवर्त्यों (चरों) को मान्यता प्रदान करता है। आज **'राजनीति का समाजशास्त्र'** (Sociology of Politics) के बजाय **'राजनीतिक समाजशास्त्र'** पद ही अधिक प्रचलित है।

## राजनीतिक समाजशास्त्र के अभ्युदय के कारण
## (POLITICAL SOCIOLOGY : CAUSES OF ITS ORIGIN)

राजनीतिक समाजशास्त्र एक प्रगतिशील विषय (Radical discipline) है। जो राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र को जोड़ने में पुल का काम करता है। इसे प्रगतिशील विज्ञान इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सामाजिक विभेद और सामाजिक परिवर्तन पर जोर देते हुए राजनीति के अध्ययन में अनौपचारिक और दुष्यक्रियात्मक पहलुओं के अध्ययन पर बल देता है। यह दो दूरस्थ विषयों को सम्बद्ध करते हुए राजनीति और समाज एवं राजनीतिक संरचना और सामाजिक परिवेश में घनिष्ठता स्थापित करता है।

राजनीतिक समाजशास्त्र के अभ्युदय के निम्नलिखित कारण हैं :

1. **राजनीति विज्ञान के परम्परागत उपागमों के प्रति असन्तोष**– राजनीति विज्ञान के अध्ययन के परम्परागत उपागम राजनीतिक संस्थाओं अर्थात् राज्य, सरकार, आदि के अध्ययन पर बल देते हैं। इनका झुकाव आदर्शात्मक अथवा संस्थागत अध्ययनों के प्रति था जिनसे वास्तविक राजनीतिक प्रक्रियाओं, स्थितियों एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया के बारे में कुछ पता नहीं चलता। इनके प्रति असंतोष ने राजनीतिक समाजशास्त्र के अभ्युदय में योगदान किया। राजनीतिक समाजशास्त्र की मान्यता है कि राजनीतिक संस्थाएं व्यक्तियों से चालित होती हैं और व्यक्तियों के व्यवहार के माध्यम से ही राजनीतिक जीवन को समझा जा सकता है, अतः वह व्यक्तियों के व्यवहार के अध्ययन को सर्वोपरि महत्व देता है।

2. **अन्तःअनुशासनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति** – परम्परागत राजनीति विज्ञान का अध्ययन अनन्यता अर्थात् अलगाव के रूप में किया जाता है और यह अपने आपको मात्र राजनीतिक क्रियाओं–प्रक्रियाओं तक सीमित कर लेता है, लेकिन राजनीतिक समाजशास्त्र की मान्यता यह है कि व्यक्ति के राजनीतिक जीवन को सामाजिक जीवन के सन्दर्भो में ही उचित रूप में समझा जा सकता है और राजनीतिक अध्ययन में अन्तः अनुशासनात्मक दृष्टिकोण (Inter-disciplinary approach) को अपनाया जाना चाहिए।

3. **राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने की प्रवृत्ति**– अनेक अर्वाचीन लेखकों ने जिनमें कैटलिन का प्रमुख स्थान है, राजनीति विज्ञान के क्षेत्र को एक ऐसा व्यापक रूप देने की चेष्टा की है जिसमें केवल राज्य को ही नहीं समाज को भी समाविष्ट किया जा सके। कैटलिन ने वास्तव में राजनीति का वह अर्थ लिया है जिसका प्रतिपादन अरस्तू ने किया था, इस अर्थ में उसने उसके क्षेत्र में उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित करने की चेष्टा की है जो समाज के तत्वावधान में घटित होती रहती हैं।

4. **व्यवहारवादी उपागम का प्रचलन** – आधुनिक व्यवहारपरक उपागमों ने अपनी उत्तम अभिव्यक्ति व्यवहारवाद की प्रवृत्ति में पायी है जहां अनेक अमरीकी लेखकों ने सामाजिक और राजनीतिक प्राणी के रूप में मनुष्य के वास्तविक या प्रेक्षण योग्य व्यवहार से सम्बन्धित तथ्यों के संग्रह और उनके परीक्षण पर बल दिया है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाने का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका के फोर्ड फाउण्डेशन को जाता है। मानव कल्याण के कार्य क्षेत्र में समाज विज्ञानों को उपयोगी बनाने के लिए इसने एक ऐसी समिति की स्थापना की जिसने राजनीतिक यथार्थ को समझने और उसी व्याख्या करने के लिए अन्तःविषयक दृष्टिकोण का इस्तेमाल करने की सिफारिश की।

व्यवहारवादी उपागम की नवीनता के लक्षण इसके चार व्यापक लक्ष्यों में निहित हैं– (1) सर्वप्रथम, व्यवहारवादी नई किस्म की सामग्री का विश्लेषण करना चाहते हैं जिसकी ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया



Scanned with CamScanner

गया है। वे व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करके राजनीति का अध्ययन करना और यह देखना चाहते हैं कि राजनीतिक संस्थाओं में क्या हो रहा है? (2) वे एक नई रीति का समर्थन करते हैं। वे सर्वेक्षण, अनुसन्धान और प्रेक्षित सामग्री व अन्य क्षेत्रीय कार्य सम्बन्धी विषयों पर सांख्यिकी को लागू करना चाहते हैं। (3) उन्होंने सामाजिक विज्ञानों, विशेषकर समाज विज्ञान और कुछ हद तक प्राकृतिक विज्ञानों, से लिये गये व्याख्यात्मक वर्गों का आविष्कार किया है। इन संकल्पनाओं में अभिजन वर्ग, भूमिका, प्रभाव, निर्णय निर्माण, नीति निर्माण, उप–व्यवस्थाएं, संरचनाओं की रचना और उनकी कार्यविधि, राजनीतिक संस्कृति, आदि शामिल हैं और वे सभी हमारे युग के समाजशास्त्रीय साहित्य में बहुत प्रचलित हो गई हैं। ये संकल्पनाएं समसामयिक व्यवहारपरक राजनीतिक सिद्धान्त का सार हैं और वे उस प्रकार के प्रश्नों से सम्बन्धित हैं जो एक नये विषय 'राजनीतिक समाजशास्त्र' की विषय–वस्तु का निर्माण करते हैं। (4) व्यवहारवादी उपागम एकत्रित सामग्री से सामान्यीकरण करने और प्रतिमानों की रचना करने से सम्बन्धित हैं जिनके द्वारा वैज्ञानिक परिशुद्धता से राजनीतिक प्रक्रियाओं के बारे में व्याख्या की जा सकती है।

संक्षेप में, व्यवहारवादी उपागम के उपयोग के परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान का बहुत व्यापक विस्तार हो गया है और यह 'राजनीतिक समाजशास्त्र' बनने की ओर उन्मुख हुआ है।

5. **राज्य और समाज में घनिष्ठता** : एक जमाने में राज्य और समाज में अन्तर किया जाता था, आज दोनों के घनिष्ठ सम्बन्धों पर जोर दिया जाता है। राजनीतिक समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि राज्य अनेक राजनीतिक संस्थाओं में से एक है और राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संस्थाओं के गुच्छे की ही एक कड़ी है।

## राजनीतिक समाजशास्त्र : प्रकृति

(POLITICAL SOCIOLOGY : NATURE)

राजनीतिक समाजशास्त्र राजनीति विज्ञान नहीं है, क्योंकि यह राजनीति विज्ञान की तरह 'राज्य और शासन का विज्ञान' (Science of state and Government) नहीं है। यह 'राजनीति का समाजशास्त्र' भी नहीं है, क्योंकि यह कवेल सामाजिक ही नहीं राजनीति से भी समान रूप से जुड़ा है।

यद्यपि राजनीतिक समाजशास्त्र 'राजनीति' में दिलचस्पी रखता है, लेकिन यह राजनीति को एक नये दृष्टिकोण से और नये संदर्भ में देखता है। राजनीति को उस दृष्टिकोण से अलग करके देखता है जिसे परम्परावादी राजनीतिशास्त्री इसे देखते आये थे। राजनीतिक समाजशास्त्र इस मूल मान्यता पर आधारित है कि सामाजिक प्रक्रिया और राजनीतिक प्रक्रिया के बीच आकृति की एकरूपता व समरूपता विद्यमान है। राजनीतिक समाजशास्त्र 'राजनीति' और 'समाज' के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction) का सघन अध्ययन है। यह सामाजिक संरचनाओं और राजनीतिक प्रक्रियाओं के मध्य सूत्रात्मकता (Linkages) का अध्ययन करता है। यह सामाजिक व्यवहार और राजनीतिक व्यवहार के मध्य पायी जाने वाली अन्तःक्रियात्मकता का अध्ययन है। यह हमें राजनीति को इसके सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में देखने का परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

राजनीतिक समाजशास्त्र के विश्लेषण की प्राथमिक इकाइयां सामाजिक संरचनाएं और राजनीति के सामाजिक उद्भव स्रोत केन्द्र (Structures of Society and social origins of Politics) सामाजिक संरचनाएं दो प्रकार की होती हैं : वृहद् और लघु। इस सवाल पर कि, क्या राजनीतिक समाजशास्त्र वृहद् और लघु दोनों तरह के समुदायों का अध्ययन करता है, दो तरह के दृष्टिकोण पाये जाते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लघु समूह एक सुनिश्चित और सुस्थापित सामाजिक व्यवस्था के भाग होते हैं। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार वृहत्तर समूहों जैसे वाणिज्य संघ, चर्च, व्यापारिक कम्पनी अथवा ऐसी ही अन्य गैर



Scanned with CamSc

सरकारी या सरकारी संगठनों के अन्दर की राजनीति सही अर्थ में राजनीतिक नहीं है। इसी दृष्टिकोण से विशद् विवेचन प्रस्तुत करते हुए ग्रीयर तथा आरलियन्स लिखते हैं कि राजनीतिक समाजशास्त्र मुख्य रूप से उस अनोखी सामाजिक संरचना जिसे 'राज्य' के नाम से जाना जाता है के वर्णन, विश्लेषण और समाजशास्त्रीय व्याख्या से सम्बद्ध है।

इसके विपरीत मार्क्स, टीटस्के, गुम्पलोविज, राजेनहोफर, ओपेनहाइमर, कैटलिन, मेरियस, लासवेल जैसे राजनीतिक समाजशास्त्री सभी तरह के सम्बन्धों में **'राजनीति'** का अस्तित्व पाते हैं। उनके विचारों का निचोड़ इस प्रकार है :

'लगभग सभी प्रकार के सम्बन्धों में राजनीति विद्यमान होती है। कालेज, परिवार और क्लब में भी विशेष रूप से राजनीति के दर्शन तब होते हैं जबकि हम एक व्यक्ति या समूह को दूसरे व्यक्ति या समूह पर अपनी इच्छा या वरीयता, उनके प्रतिरोध के बावजूद, थोपते हुए पाते हैं।' 'समूहों या वर्गों के बीच होने वाले संघर्षो में बल और शक्ति की उपस्थिति सभी प्रकार के राजनीतिक सम्बन्धों का एक अन्तर्निहित पहलू है।' 'राजनीति सम्पूर्ण समाज में व्याप्त होती है। यह प्रत्येक सामाजिक समूह, संघ, वर्ग और व्यवसाय में फैली होती है। 'यहां तक की गैर संगठित समुदायों, जनजातियों, संघों और परिवारों की राजनीति भी राजनीति होती है और राजनीति समाजशास्त्र की विषय–वस्तु होती है। 'राजनीतिक समाजशास्त्र की मूल मान्यता है कि प्रत्येक प्रकार का मानवीय सम्बन्ध राजनीतिक होता है।'

राजनीतिक समाजशास्त्र **'राजनीति'** को राज्य की बंधी सीमाओं से मुक्त कर बाहर निकालता है और इस धारणा का प्रतिपादन करता है कि राजनीति केवल राज्य में नहीं बल्कि समाज के समग्र क्षेत्र में व्याप्त रहती है। राजनीतिक समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में राजनीति केवल 'राजनीतिक' नहीं रह जाती है, यह गैर राजनीतिक और सामाजिक भी हो जाती है और इस प्रकार राजनीति के गैर–राजनीतिक और सामाजिक प्रकृति के प्रकाश में राजनीतिक समाजशास्त्र उस खाई को पाटने का प्रयास है जो समाज और राज्य के बीच काफी समय से चली आ रही थी। इस प्रकार राजनीतिक समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रिया और राजनीतिक प्रक्रिया में तादाम्य स्थापित करने का प्रयास है।

राजनीति समाजशास्त्र शक्ति की दृश्यसत्ता (Phenomenon of Power) को अपना प्रमुख प्रतिपाद्य विषय मानता है और यह स्वीकार नहीं करता कि शक्ति राज्य का एकमात्र एकाधिकार है। इसके बदले यह मानता है कि समाज के प्राथमिक और द्वितीयक समूह सम्बन्धों में शक्ति संक्रियाशील होती है। राजसमाजशास्त्री की दृष्टि में शक्ति न केवल आवश्यक रूप से सामाजिक है बल्कि सम्बन्धात्मक और परिणामात्मक अथवा मापनीय भी है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी शक्ति सम्बन्ध में शक्ति धारक की तुलना में शक्ति प्रेषिती कम महत्वपूर्ण नहीं है। समाजशास्त्र तार्किक–वैधिक सत्ता (rational-legel authority) के लिए अपनी सुस्पष्ट वरीयता व्यक्त करता है। तार्किक–वैधिक सत्ता सुविचारित रूप से निर्मित और व्यापक स्तर पर स्वीकृत नियमों से कठोर रूप से बंधी होती है।

राजनीतिक समाजशास्त्री आधुनिक समाज में न केवल असीमित शक्ति के प्रयोग को असम्भव मानता है, बल्कि यह भी स्वीकार करता है कि आधुनिक समाज में राजसत्ता कुछ हाथों में सिमटी रहती है। इसकी यह भी मान्यता है कि समाज में राजशक्ति का असमतल बंटवारा ठीक उसी तरह होता है जिस तरह से समाज में संसाधनों का बंटवारा असमतल होता है और इस असमतल बंटवारे को व्यापक जनादेश के आधार पर प्राप्त सहमति और सर्वसम्मत्ति के माध्यम में वैधिक, औचित्यपूर्ण और स्थायी बनाया जाता है। स्थायित्व प्राप्त और औचित्यपूर्ण शक्ति सम्बन्धों के इसी सामान्य प्रतिरूप की पृष्ठभूमि में राजनीतिक समाजशास्त्र कुछ नितान्त आवश्यक प्रासंगिक प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करता है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक समाजशास्त्र नौकरशाही का अध्ययन नीतियों को लागू करने वाले प्रकार्यो को निष्पादित करने वाले राज्य के एक अपरिहार्य यन्त्र या तन्त्र के रूप में नहीं करता बल्कि एक ऐसे



Scanned with CamScanner

महत्वपूर्ण सामाजिक समूह के रूप में करता है जिसकी आधुनिक समाज की बढ़ती हुई विषमताओं के संदर्भ में एक बहुत बड़ी प्रकार्यात्मक आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक समाजशास्त्र नौकरशाही को इसके विशिष्ट राजनीतिक संदर्भ में नहीं, इसके वृहत्तर सामाजिक संदर्भ में समझना चाहता है।

संक्षेप में, राजनीतिक समाजशास्त्र इस बात की परीक्षा करने में अभिरूचि रखता है कि राजनीति सामाजिक संरचनाओं को और सामाजिक संरचनाएं राजनीति को कैसे प्रभावित करती हैं।

## 1.3 राजनीतिक समाजशास्त्र के विशेष उपागम :

राजनीतिशास्त्र में परम्परागत रूप से राज्य–व्यवस्था का ही अध्ययन किया जाता रहा है। राज्य–व्यवस्था के अध्ययन से अभिप्राय संविधान (लिखित एवं अलिखित) के विभिन्न अनुच्छेदों, सरकार द्वारा पारित अधिनियमों तथा संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाओं के विश्लेषण से है। इसके साथ ही, राजनीतिशास्त्र में स्थानीय समुदायों एवं समाजों के अध्ययन में रूचि की एक लम्बी परम्परा होने के कारण राज्य–व्यवस्था का अध्ययन भी इन्हीं के संदर्भ में किया जाता रहा है तथा बाह्य (अस्थानीय) राजनीतिक व्यवस्थाओं का उल्लेख यदा–कदा केवल संदर्भ के लिए ही किया जाता रहा है।

उपागम किसी परिस्थिति या वस्तु–स्थिति के बारे में प्रकट अथवा प्रच्छन्न मान्यताओं का संघात होता है जोकि वैज्ञानिक अध्ययन का आधार बनता है। यह एक बौद्धिक रचना (Intellectual construct) की प्रकृति की अवधारणा होती है जिसके द्वारा किसी सामाजिक अथवा भौतिक परिस्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है। ये परिस्थितियाँ वास्तविक अथवा प्राक्कल्पनात्मक हो सकती हैं। इसे किसी समस्या का अध्ययन करने की विधि अथवा उपाय (Streategy) भी कहा जा सकता है जिसके आधार पर उस समस्या का विश्लेषण किया जा सके। राजनीतिक समाजशास्त्र में विभिन्न राजनीतिक स्थितियों, प्रक्रियाओं अथवा चरों का अध्ययन कई उपागमों (जैसे आदर्शात्मक, संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक, व्यवस्थात्मक, व्यवहारात्मक तथा संघर्षात्मक आदि) द्वारा किया जाता है तथा प्रत्येक उपागम उस विशिष्ट समस्या (जिसका कि इसके द्वारा अध्ययन किया जा रहा है) के किसी विशेष पहलू पर अधिक बल देता है। कुछ विद्वानों (जैसे डेविस तथा लुइस) ने इन उपागमों को प्रतिरूप भी कहा है। समस्या के अध्ययन के लिए कुछ सैद्धान्तिक कल्पनाओं का निर्माण किया जाता है जिनसे अगर वास्तविक इकाई के सम्पूर्ण व्यवहार को नही तो कम से कम उसकी प्रमुख विशेषताओं का तो पता चल जाता है, उन्हें ही प्रतिरूप कहा जा सकता है। डेविस तथा लुइस (Davies & Lewis) के शब्दों में, "प्रतिरूप किसी इकाई के व्यवहार के बारे में आनुभविक सिद्धान्त बनाने के लिए निर्मित कुछ सैद्धान्तिक कल्पनाएँ हैं।"

राजनीतिक समाजशास्त्र में प्रयुक्त किये जाने वाले उपागमों को, एस.पी. वर्मा के अनुसार दो श्रेणियाँ में विभाजित किया जा सकता है :

(अ) वैधानिक–ऐतिहासिक अथवा आदर्शात्मक उपागम; तथा

(ब) आनुभविक विश्लेषणात्मक अथवा वैज्ञानिक व्यवहारात्मक उपागम।

प्रथम श्रेणी के उपागमों में इस मान्यता को महत्व दिया जाता है कि राजनीति का अध्ययन वैधानिक ढंग से नहीं किया जा सकता अतः इसका प्रयास ही नहीं किया जाना चाहिये। आदर्शात्मक उपागम इस श्रेणी का प्रमुख उदाहरण है जिसका प्रचलन राजनीतिशास्त्र से प्रभावित राजनीतिक समाजशास्त्रियों में रहा है। द्वितीय श्रेणी के उपागमों के साथ यह मान्यता जुड़ी हुई है कि तथ्यों पर आधारित राजनीति का विज्ञान सम्भव है तथा राजनीति विश्वासों एवं मनोवृत्तियों तक का आनुभविक एवं तटस्थ रूप से अध्ययन किया जा सकता है। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक, व्यवस्थात्मक, व्यवहारात्मक तथा संघर्षात्मक उपागम दूसरी श्रेणी के उपागमों के प्रमुख उदाहरण हैं।

### 1.3.1 आदर्शात्मक उपागम :



Scanned with CamScanner

आदर्शात्मक अथवा मानवीय उपागम, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, आनुभविक अध्ययनों पर बल न देकर आदर्शों, प्रतिमानों अथवा संस्थाओं के अध्ययन पर बल देता है। राजनीतिशास्त्र में 'आदर्श' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है– प्रथम, राजनीतिशास्त्र प्रमुख रूप से विभिन्न प्रकार के आदर्शों या प्रतिमानों से सम्बन्धित है तथा द्वितीय, राजनीतिशास्त्र इस अर्थ में भी आदर्शवादी है कि यह शासकों तथा नागरिकों को उनके व्यवहार के बारे में सलाह भी देता है। मुख्य रूप से आदर्शों, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों, व्यक्तियों तथा राज्यों के अधिकारों तथा निर्णायकों (Decision-makers) को सलाह देने से सम्बन्धित होने तथा नियम–निर्माण की समस्या को एक पृथक् दृष्टिकोण प्रदान करने के कारण इस परम्परागत उपागम को कभी–कभी भावमूलक (Ideographic) उपागम भी कहा गया है।

आदर्शात्मक उपागम निगमनात्मक पद्धति पर आधारित है क्योंकि इसमें कुछ आधार–वाक्यों (Premises) को केन्द्र–बिन्दु मानकर अध्ययन किया जाता है तथा इन आधार–वाक्यों को तर्क की प्रक्रिया द्वारा राज्य, शासन, राजनीतिक संस्थाओं अथवा नागरिकों के राजनीति व्यवहार लागू करके इनसे सम्बन्धित 'सिद्धान्त' बनाने का प्रयास किया जाता है। प्रारम्भ में राजनीतिशास्त्र इतिहास, नीतिशास्त्र (Ethics), दर्शनशास्त्र तथा विधिविज्ञान (Law) से अत्यधिक प्रभावित था। अतः प्लेटो से लेकर वर्के तक विभिन्न विद्वानों ने इस प्रभाव के कारण इतिहास, दर्शनशास्त्र एवं विधिविज्ञान के आधार–वाक्यों का प्रयोग राजनीतिक, सिद्धान्त बनाने के लिये किया, इसी कारण आदर्शात्मक उपागम को ही राजनीतिक स्थितियों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया क्योंकि इस उपागम द्वारा किये जाने वाले अध्ययन में राजनीतिक वास्तविकता की उपेक्षा की जाती है अतः यह आनुभविक एवं वैज्ञानिक अध्ययनों में सहायक नहीं होता। प्लेटो, अरस्तू, कान्त, हीगेल, फिक्टे, ग्रीन, बैडले, थॉमस मोर, बोसांके तथा सिजविक इत्यादि विद्वानों ने इस उपागम को समर्थन प्रदान किया है। इन विद्वानों का विचार है कि सभी सामाजिक विज्ञान आदर्शात्मक होते हैं; इसलिए आदर्शात्मक उपागम ही इन विज्ञानों में अध्ययन का प्रमुख उपागम होना चाहिए। इन चिन्तकों का यह भी विचार है कि राजनीति में तथ्य तथा मूल्य इस प्रकार आपस में जुड़े हुए होते हैं कि इनको एक–दूसरे से भिन्न करना अत्यन्त कठिन कार्य है। राजनीति के बारे में कोई भी विस्तृत सिद्धान्त राजनीतिक स्थितियों के नैतिक मूल्यों तथा उनके मूल्यांकन के बिना नहीं बनाया जा सकता, अतः राजनीति के बारे में पूर्ण वस्तुनिष्ठ सिद्धान्त के बारे में सोचना भी केवल एक भ्रम है।

आदर्शात्मक उपागम के समर्थकों का कहना है कि राजनीति के अध्ययन का एक विशेष उद्देश्य है और यह उद्देश्य ठीक प्रकार से कार्य करने, सबसे अच्छे का चयन करने तथा साथियों के साथ अच्छी तरह रहने के योग्य क्षमताओं का विकास करना है। इस सब में अच्छे–बुरे तथा मूल्यांकन का सहारा लेना पड़ता है। इन विद्वानों ने यह विचार भी प्रस्तुत किया है कि विज्ञान का अर्थ विस्तृत रूप में लिया जाना चाहिए तथा मूल्य–निर्णयों (Value judgements) को भी विज्ञान में ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

संक्षेप में आदर्शात्मक उपागम की निम्नांकित प्रमुख मान्यताएं हैं :

1. सभी सामाजिक विज्ञान आदर्शात्मक होते हैं, अतः हमें केवल आदर्शों, प्रतिमानों अथवा संस्थाओं का ही अध्ययन करना चाहिए।
2. मूल्यों से सम्बन्धित होने के कारण राजनीति का आनुभविक अध्ययन करना और वस्तुनिष्ठ सिद्धान्त का निर्माण करना सम्भव नहीं है।
3. राजनीति के अध्ययन का एक निश्चित उद्देश्य शासकों एवं नागरिकों को उनके आदर्श व्यवहार के बारे में सलाह देना है।
4. यह काल्पनिक विचारधारा अथवा आधार–वाक्यों पर आधारित है तथा निगमनात्मक पद्धति पर बल देता है।



Scanned with CamSc

प्रथमतः प्लेटो तथा अरस्तू ने आदर्शात्मक उपागम तथा इसकी सहायता से अध्ययन करने को मान्यता प्रदान की। दोनों राज्य को एक अनिवार्य, आत्म–निर्भर तथा सर्वोच्च नैतिक संस्था मानते हैं। इन्होंने राज्य तथा समाज में किसी प्रकार का भेद न करते हुए इस बात पर बल दिया कि राज्य ही सब कुछ है तथा राज्य से पृथक् होकर मनुष्य आदर्श जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। अरस्तू ने राज्य की तुलना मानव शरीर से की है। जैसे शरीर से पृथक् अंग का कोई अस्तित्व नहीं, ठीक उसी प्रकार राज्य से पृथक् मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं। राज्य का विकास सर्वप्रथम मनुष्य के जीवन के कारण ही हुआ परन्तु आज राज्य व्यक्तियों के जीवन की रक्षा करने के लिए विद्यमान है। राज्य का उद्देश्य नागरिकों में नैतिक व्यक्तित्व का विकास करना है। इस प्रकार राजनीति में नैतिकता का प्रवेश तथा इसे आदर्शो एवं प्रतिमानों द्वारा समझने का श्रेय प्लेटो और अरस्तू को ही दिया जाता है। इनका विचार था कि नैतिक जीवन तथा नागरिक स्वतंत्रता राज्य द्वारा ही सम्भव होती है।

प्लेटो तथा अरस्तू के विचारों को आगे बढ़ाने का श्रेय रूसों को दिया जाता है। इन्होंने भी राज्य की तुलना एक सावयव से की है तथा राज्य का सामान्य लक्ष्य 'सार्वजनिक कल्याण' करना बताया है। रूसों के अनुसार, राज्य में रहकर ही मानव का बौद्धिक एवं अध्यात्मिक विकास सम्भव है। कान्त तथा हीगेल ने भी राज्य को एक आदर्श संस्था माना है। इनके अनुसार नागरिकों का कर्त्तव्य राज्य की सेवा करना है न कि सत्ता के विरूद्ध क्रान्ति करना। कान्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सबल विरोधी नहीं थे, परन्तु इनका कहना था कि स्वतंत्रता से अभिप्राय सार्वजनिक हित में कार्य करना है न हि अपनी इच्छानुसार कार्य करना। हीगेल ने आदर्शवाद को और अधिक उग्र प्रदान करते हुए यह कहा है कि राज्य पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण है। राज्य क्योंकि ईश्वरीय देन है इसलिए गलती नहीं कर सकता। राज्य सर्वशक्तिशाली है तथा इसकी ही इच्छा व्यक्तियों की सही इच्छा है। ग्रीन ने यद्यपि राज्य को एक स्वाभाविक तथा आवश्यक वस्तु माना है, फिर भी, वे इसे निरंकुश बनाने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए इन्होंने राज्य पर नियंत्रण लगाने का समर्थन किया।

आदर्शात्मक उपागम व्यक्तियों, समूहों तथा व्यक्तियों द्वारा निर्मित संस्थाओं के व्यवहार के अध्ययन से अधिक उपयोगी नहीं है। **प्रथम,** इसमें वास्तविकता का अध्ययन न करके केवल आदर्शों तथा मान्यताओं को ही महत्व दिया जाता है। आनुभविक न होने के कारण इसकी तुलनात्मक उपयोगिता भी सीमित है। **दूसरे,** वास्तव में यह उपागम काल्पनिक विचारधारा अथवा आधार–वाक्यों पर बल देता है जिनका मानव समाज में यथार्थ राजनीतिक व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए व्यवहारिक जीवन में इसकी कोई उपयोगिता नहीं है। **तीसरे,** इस उपागम के समर्थक राज्य तथा समाज को एक ही संस्था मानते हैं जोकि वास्तव में ठीक नहीं है। आज यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य तथा समाज दो भिन्न तत्व हैं। साथ ही, राज्य को सर्वसत्ताधारी मानना तथा इसको सर्वोच्च स्थान देना भी उचित नहीं है। राज्य को पूर्ण और दोषरहित मानना भी भ्रामक है।

आदर्शात्मक उपागम को यद्यपि राजनीतिक समाजशास्त्र में एक ऐसा पारस्परिक उपागम माना गया है जिसकी आज कोई अधिक उपयोगिता नही रह गई है, फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि प्लेटो तथा हीगेल जैसे महान् विचारकों की कृतियाँ आज भी आधुनिक राजनीतिक समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र के पठन–पाठन में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यह भी नहीं समझना चाहिए कि इस उपागम द्वारा राजनीतिक तथ्यों का परीक्षण किये बिना ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एलेन बाल के अनुसार प्लेटो की 'दार्शनिक शासक' की खोज तथा हॉब्स के 'लिवेथान' का उतना ही महत्व है जितना कि अरस्तू के ग्रीक नगर–राज्यों के संविधान के विशद् संकलन का अथवा मैकियावली के उस राजनीतिक परामर्श का, जो उसने राजनीतिक तथ्यों के परीक्षण व इटली की पुनर्जागरण–कालीन राज्यों की सरकारों में भाग लेने के बाद दिया था। इतना ही नहीं, आदर्शवादी विचारकों ने जिन प्रश्नों को उठाया है, वे आज भी



Scanned with CamSc

महत्वपूर्ण हैं। इन सबके बावजूद बहुत अंशों में यह सत्य है कि आदर्शात्मक उपागम वैज्ञानिक अध्ययनों में अधिक सहायक नहीं होता।

## 1.3.2 संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम :

राजनीतिशास्त्र में प्रचलित आदर्शात्मक–दार्शनिक अथवा मानकीय उपागम तथा समाजशास्त्र में प्रचलित उद्‌विकासीय एवं ऐतिहासक उपागमों की खामियों (सीमाओं) को दूर करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप राजनीतिक समाजशास्त्र में राजनीतिक व्यवहार का आनुभविक रूप से अध्ययन करने के लिए अनेक अन्य उपागम प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें से एक संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम है। इस उपागम के बारे में यद्यपि प्रारम्भिक विचार प्रस्तुत करने का श्रेय हरबर्ट स्पेन्सर को है, फिर भी समाजशास्त्र में इसका अत्यधिक प्रयोग करने का श्रेय इमाइल दुर्खीम, रॉबर्ट, के. मर्टन, टालकट पारसंस तथा मेरियन जे.लेवी जैसे विद्वानों को दिया जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण के संदर्भ में राजनीतिक समाजशास्त्र में इसका प्रयोग गोब्रियल आमण्ड, डेविड आप्टर तथा विलियम सी. मिचेल ने किया है।

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम द्वारा किसी इकाई का विश्लेषण उसकी संरचना तथा प्रकार्यो के आधार पर किया जाता है। सभी व्यवस्थाओं की संरचनाओं में अनेक घटक (अंग) या तत्व होते हैं जिनसे उन्हें पहचाना जा सकता है और ये अंग विभिन्न भूमिकाएं निभाते हुए सम्पूर्ण व्यवस्था को बनाये रखते हैं। इस उपागम में व्यवस्था को एक सन्तुलन के रूप में माना जाता है जिसके विभिन्न अंग अन्योन्याश्रित हैं तथा किसी एक अंग में परिवर्तन अन्य अंगों को भी प्रभावित करता है। इस उपागम द्वारा किसी व्यवस्था के विभिन्न अंगो, उनमें पाये जाने वाले परस्पर सम्बन्धों एवं उनके प्रकार्यो या भूमिकाओं का विश्लेषण किया जाता है। यह उपागम विभिन्न व्यवस्थाओं की तुलना करने में भी सहायक है।

डेहरेनडोर्फ (Dahrendorf) के अनुसार इस उपागम की चार प्रमुख मान्यताएँ हैं :

1. प्रत्येक समाज तत्वों की अपेक्षाकृत स्थायी एवं सतत् (Persistent) संरचना है।
2. प्रत्येक समाज तत्वों की सुव्यवस्थित समाकलनात्मक संरचना है।
3. समाज के प्रत्येक तत्व का कुछ न कुछ प्रकार्य होता है अर्थात् यह इसे एक व्यवस्था के रूप में बनाये रखने में योगदान प्रदान करता है।
4. प्रत्येक प्रकार्यात्मक सामाजिक संरचना अपने सदस्यों के मूल्यों में मतैक्य (Consensus) पर आधारित है।

राजनीतिक विश्लेषण की एक विधि के रूप में संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम इस तथ्य पर बल देता है कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं की एक राजनीतिक संरचना होती है जोकि व्यवस्था की अन्य संरचनाओं से स्पष्ट रूप से पृथक् होती है। राजनीतिक व्यवस्था को अन्य व्यवस्थाओं से अवधारणात्मक दृष्टि से पृथक् किया जा सकता है क्योंकि इसे रोजगार अथवा रोजगार के बारे में धमकी, कम या अधिक वैधानिक भौतिक बाध्यता के साधनों द्वारा समाकलन एवं अनुकूलन, प्रकार्यो (समाजांतर्गत तथा समाज–बाह्य) को पूरा करने वाली इकाई के रूप में देखा जाता है। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विश्लेषण इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक व्यवस्था को निरन्तरण पर्यावरण से चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक समाजशास्त्र में आमण्ड ने इस उपागम का प्रयोग शास्त्रीय रूप में किया है।

## आमण्ड (Almond) का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विश्लेषण :

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण का सर्वाधिक सफल प्रयास गेब्रियल आमण्ड ने किया है, अतः इस उपागम को स्पष्ट रूप से इनके विश्लेषण द्वारा समक्षा जा सकता है। आमण्ड ने संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण दो



Scanned with CamSc

उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया–प्रथम, वह एक ऐसा सिद्धान्त बनाना चाहते थे जो राजनीति व्यवस्थाओं की एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तन की व्याख्या कर सके तथा द्वितीय, राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण करना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनका उद्देश्य (1) राजनीतिक विकास का सिद्धान्त बनाना, तथा (2) तुलनात्मक राजनीति के विज्ञान का विकास करना था।

आमण्ड के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में चार प्रमुख संरचनाएँ पायी जाती हैं जिन्हें अन्तःक्रियाओं की औचित्यपूर्ण प्रकृति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। प्रथम, इन संरचनाओं में से कुछ संरचनाएँ अधिक विशेषीकृत होती हैं अर्थात् वे अन्य की अपेक्षा कम प्रकार्यो का निष्पादन करती है; द्वितीय, सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ एक समान राजनीतिक भूमिकाएँ निभाती हैं, चाहे इनकी संरचनाओं में कितना भी अन्तर क्यों न हो; तृतीय, विभिन्न राजनीतिक संरचनाएं बहु–प्रकार्यात्मक (Multi-functional) होती हैं अर्थात् अनेक प्रकार की भूमिकाएँ निभाती हैं; तथा चतुर्थ, क्योंकि सभी राजनीतिक संरचनाओं में संस्कृति पायी जाती है, इसलिये व्यवस्था विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों से निरन्तर प्रभावित होती रहती है तथा संस्कृतियों में आधुनिकता और परम्परा का मिश्रण पाया जाता है।

सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ, चाहे वे किसी भी प्रकार की हों; अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए तथा इसमें संतुलन बनाये रखने के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार्यो का निष्पादन करती हैं। ये कार्य व्यवस्था की प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा कहलाते हैं। विभिन्न राजनीति व्यवस्थाओं में इन प्रकार्यो का निष्पादन विभिन्न प्रकार की संरचनाओं द्वारा किया जाता है जिनमें से हो सकता है कि कुछ संरचनाएँ ऐसी हों जिन्हें मूलतः राजनीतिक नहीं माना जा सकता। आमण्ड का कहना है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना केवल मात्र इनकी संरचनाओं की तुलना ही नहीं है क्योंकि हो सकता है कि (1) इन संरचनाओं द्वारा सभी आवश्यक प्रकार्यो का निष्पादन न हो अथवा (2) वे उन प्रकार्यो का निष्पादन नहीं कर पा रही हों जिन्हें वे पहले कभी कर रही थीं तथा इन्हें अब एवजी या पूरक संरचनाएँ (Substitute structures) पूरा कर रही हों।

अतः तुलना के लिए संरचनाओं की अपेक्षा प्रकार्यो का विश्लेषण करना चाहिये जो सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में समान रूप में पाये जाते हैं अर्थात् प्रश्न इस प्रकार से पूछा जाना चाहिये कि अगर अमुक प्रकार्यो का निष्पादन किया जाना है, तो कौन सी क्रिया–विधि (Machanism) वास्तव में उन प्रकार्यो को निष्पादित कर रही है? दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि आमण्ड संरचनाओं से अध्ययन प्रारम्भ करके उनके प्रकार्यो का पता लगाने के पक्ष में नहीं नहीं थे अपितु इसके विपरीत प्रकार्यो से उन संरचनाओं को खोजने के पक्ष में थे जिनके द्वारा इन प्रकार्यो का निष्पादन किया जाता है।

आमण्ड प्रेक्षण–योग्य राजनीतिक यांत्रिकताओं के अध्ययन पर अधिक बल न देकर उन क्षेत्रों से अध्ययन की शुरूआत पर बल देते हैं जो व्यवस्थाओं की प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति से वास्तव में सम्बन्धित है। राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना प्रकार्यो को निष्पादित किये जाने वाले तरीकों से की जा सकती है। इनका विचार है कि प्रत्येक व्यवस्था दो प्रकार के कार्यो का निष्पादन करती है–**आगत या निवेशन** (Input) सम्बन्धी तथा **निर्गत या निर्गतन** (Output) सम्बन्धी प्रकार्य। राजनीतिक व्यवस्था, विभिन्न भूमिकाओं, संरचनाओं तथा उप–व्यवस्थाओं से निर्मित होती है जिसमें अन्तःक्रियाएँ कर्त्ताओं के मनोवैज्ञानिक झुकाव तथा विशेषताओं द्वारा प्रभावित होती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रक्रिया का अध्ययन पर्यावरण के सन्दर्भ में किया जा सकता है। पर्यावरण से उत्पन्न निवेशन अथवा राजनीतिक व्यवस्था के अन्दर विकसित निवेशन अथवा निवेशन प्रकार्यो के निर्गतन प्रकार्यो में परिवर्तन के रूप में इस प्रक्रिया की तुलना की जा सकती है। निर्गतन प्रकार्य भी कालान्तर में पर्यावरण में परिवर्तन करके राजनीतिक व्यवस्था के लिए नवीन माँगों को विकसित करते हैं तथा इसे पुनर्भरण या पुनर्निवेशन (Feedback) कहा जाता है।



Scanned with CamScanner

इसी पुनर्निवेशन की धारणा से राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन एवं विकास का अध्ययन करना सम्भव है। आमण्ड ने अपने विश्लेषण में चार निवेशन तथा तीन निर्गतन प्रकार्यो का उल्लेख किया है :

**(अ) <u>निवेशन प्रकार्य</u> :**

1. राजनीतिक समाजीकरण एवं भर्ती (Political socialization and recruitment)
2. हित संधियोजन (Interest articulation)
3. हित एकत्रीकरण (Interest aggregation)
4. राजनीतिक संचार (Political communication)

**(ब) <u>निर्गतन प्रकाय</u> :**

1. कानून–निर्माण (Rule-making)
2. कानून–प्रयोग (Rule-application)
3. कानून–निर्धारण (Rule-adjucation)

आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में विवेचना करते हुए आमण्ड ने यह विचार प्रकट किया है कि निवेश्न प्रकार्यो का निष्पादन राजनीतिक व्यवस्था की गैर–सरकारी उप–व्यवस्थाओं, समाज तथा सामान्य पर्यावरण, हित–समूहों, स्कूलों, राजनीति दलों, समाचार–पत्रों आदि द्वारा होता है, जबकि इसके विपरीत निर्गतन सम्बन्धी प्रकार्यो का निष्पादन सरकार तथा उसके अधिकारीतंत्र द्वारा किया जाता है। निवेशन की धारणा को विकसित करके आमण्ड ने यह सिद्ध कर दिया कि राजनीतिक व्यवस्था एक बन्द व्यवस्था नहीं है क्योंकि यह पर्यावरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से निरन्तर प्रभावित होती रहती है। निवेशन सम्बन्धी प्रकार्यो, विशेष रूप से राजनीतिक समाजीकरण तथा राजनीतिक संचार का उद्देश्य राजनीतिक मूल्यों का विस्तारीकरण है।

जिन यन्त्रों अथवा तरीकों से राजनीतिक व्यवस्था निवेशन प्रकार्यो को निर्गतन प्रकार्यो में परिवर्तित करती है; उसे आमण्ड परिवर्तन–प्रक्रिया (Conversion mechanism) कहता है। राजनीतिक व्यवस्था की क्षमताओं का ज्ञान इस बात से हो सकता है कि वह निवेशन सम्बन्धी प्रकार्यो का सामना कैसे करती है। क्षमताओं का विश्लेषण आनुभविक रूप में किया जा सकता है तथा निर्गतनात्मक विश्लेषण भी इसमें सहायक हो सकता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन नवीन माँगों द्वारा हो सकता है तथा इन नवीन माँगों के तीन स्रोत हैं : (1) राजनीतिक व्यवस्था के भीतर पाये जाने वाले संभ्रांतजन, (2) पर्यावरण में पाये जाने वाले विभिन्न सामाजिक समूह; तथा (3) अन्य राजनीतिक व्यवस्थाएँ। आमण्ड के अनुसार, वह राजनीतिक व्यवस्था अधिक स्थायी होगी जिसमें निवेशन प्रकार्यो को इस ढंग से परिवर्तित कर दिया जाता है कि वे स्वयं राजनीतिक व्यवस्था पर कोई दबाव नहीं डालते अर्थात् निवेशन एवं निर्गतन प्रकार्यो में सामंजस्य व्यवस्था को अधिक स्थायित्व प्रदान करता है।

आमण्ड का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विश्लेषण यद्यपि तुलनात्मक अध्ययनों, वास्तविक व्यवहार तथा व्यवस्थाओं को समझने में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है और इस उपागम में राजनीतिशास्त्रियों एवं राजनीतिक समाजशास्त्रियों ने आनुभविक तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहन दिया है, फिर भी इसमें संरचनात्मक– प्रकार्यात्मक उपागम की सामान्य सीमाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। **प्रथम,** यह उपागम केवल एक पक्ष अर्थात् समाकलन या संतुलन पर अधिक बल देता है तथा इसीलिए इसके द्वारा किए गये अध्ययनों से राजनीतिक व्यवस्थाओं में पाये जाने वाले संघर्ष का पता नहीं चल पाता। **द्वितीय,** इस उपागम से राजनीतिक जीवन के अनेक पहलुओं, विशेष रूप से प्रभाव, शक्ति एवं सत्ता से सम्बन्धित पहलुओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता। **तृतीय,** यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं का सम्पूर्ण विश्लेषण करने में सहायक नहीं है क्योंकि इसमें प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली



Scanned with CamScanner

संरचनाओं पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। **चतुर्थ,** राजनीतिक संरचना तथा उसके द्वारा निष्पादित प्रकार्यों में सम्बन्ध कई बार भ्रामक हो सकता है। **पंचम,** यह एक जटिल उपागम है जिसका प्रयोग सभी प्रकार की परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए नहीं किया जा सकता। इन सभी सीमाओं के बावजूद आमण्ड का विश्लेषण राजनीतिक समाजशास्त्र में राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका अधिकतर प्रयोग अभी तक केवल पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए ही किया गया है। अतः इसका मूल्यांकन अन्य व्यवस्थाओं के विश्लेषण में भी किया जाना चाहिए।

## 1.3.3 व्यवस्थात्मक उपागम (System Approach) :

व्यवस्थात्मक उपागम का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में बढ़ते हुए सहयोग का परिणाम है। व्यवस्था का संप्रत्यय भौतिक विज्ञानों एवं संचार विज्ञानों से लिया गया है। प्रथमतः इसे नृविज्ञान (मानवशास्त्र) में तथा बाद में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र तथा राजनीतिक समाजशास्त्र में अपनाया गया। नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र में इस उपागम के साथ इमाइल दुर्खीम, ए.आर. रेडक्लिफ–ब्राउन, ब्रोनिस्ला मेलिनोवस्की, रॉबर्ट के. मर्टन तथा टालकट पारसंस के नाम जुड़े हुए हैं जबकि राजनीतिशास्त्र तथा राजनीतिक समाजशास्त्र में डेविड ईस्टन, गेब्रियल आमण्ड, मोरटोन कापलान को इस उपागम से जोड़ा जाता है। इसके समर्थक मानव सम्बन्धों को स्थायी प्रतिमानों की व्यवस्था मानते हैं जो कि हर स्थान पर पायी जाती है। आधुनिक राजनीतिक समाजशास्त्र की यह मान्यता है कि राजनीतिक क्रियाओं तथा इनके प्रभाव का अध्ययन केवल राज्य की धारणात्मक सीमा तक ही सीमित नहीं है अपितु सर्वव्यापकता के कारण गैर–राजनीतिक संस्थाओं तथा संरचनाओं की क्रियाओं में भी इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अतः आज 'राजनीति' शब्द का प्रयोग किसी विशेष संस्थानिक परिवेश में न कर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के परिवेश में किया जाने लगा है तथा राजनीति को एक व्यवस्था मानने का विचार राजनीतिक समाजशास्त्र में मान्य हो गया है।

**कन्साइस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी** में व्यवस्था शब्द की परिभाषा दो संदर्भो में दी गई है–**प्रथम,** 'व्यवस्था एक जटिल समष्टि या सम्बन्धित वस्तुओं अथवा भागों का एक कुलक या भौतिक अथवा अभौतिक वस्तुओं का संगठित निकाय है; तथा **द्वितीय,** 'व्यवस्था प्रणाली, संगठन तथा कार्य–पद्धति और वर्गीकरण के निर्धारित सिद्धान्त का बोध कराती है। अतः व्यवस्था से एक ऐसे कुलक का बोध होता है जो संगठित है अर्थात् जिसके विभिन्न घटक या भाग परस्पर सम्बन्धित एवं अन्योन्याश्रित हैं। यह व्यवस्था किसी पर्यावरण के सन्दर्भ में कार्यरत होती है।

व्यवस्थात्मक उपागम द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के विश्लेषण तथा विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करने का दावा किया गया है। यद्यपि संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की तरह व्यवस्थात्मक उपागम में भी राजनीतिक व्यवस्था के प्रकार्यो के विश्लेषण पर बल दिया जाता है, फिर भी यह पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक है तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं व्यवहार के विश्लेषण में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन संरचनाओं के विश्लेषण की अपेक्षा अन्तःक्रियाओं एवं प्रकार्यो के विश्लेषण द्वारा किया जाता है तथा राजनीतिक व्यवस्था की निरन्तरता एवं इसमें पाये जाने वाले संतुलन पर बल दिया जाता है। इस उपागम द्वारा हमें उन दशाओं का पता चल जाता है जोकि राजनीतिक व्यवस्था के अस्तित्व को निरन्तर बनाये रखती हैं तथा इससे हम यह पता भी लगा सकते हैं कि किस प्रकार निवेशन प्रकार्य निर्गतन प्रकार्यो में और निर्गतन प्रकार्य पुनर्निवेशन प्रक्रिया द्वारा फिर से निवेशन प्रकार्यो में परिवर्तित होते हैं और व्यवस्था में संतुलन बनाये रखते है।

संक्षेप में व्यवस्थात्मक उपागम की निम्नांकित प्रमुख विशेषताएँ हैं :



Scanned with CamSc

1. यह संतुलन पर बल देता है अर्थात् इसके समर्थक यह स्वीकार करते हैं कि व्यवस्था के अन्दर स्वचालित यंत्र होते हैं जो कार्यो में संतुलन तथा पर्यावरण से अनुकूलन बनाये रखते हैं।
2. यह संरचनाओं के विश्लेषण की अपेक्षा कर्त्ताओं की अन्तःक्रियाओं एवं प्रकार्यो के विश्लेषण को महत्व देता है।
3. इसमें व्यवस्था की सम्पूर्णता अथवा समग्रता को स्वीकार किया जाता है तथा इसे पर्यावरण के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाता है।
4. किसी व्यवस्था को किन्हीं निश्चित सीमाओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है अथवा इन्हीं सीमाओं द्वारा विभिन्न व्यवस्थाओं में अन्तर किया जा सकता है।

## डेविड ईस्टन व्यवस्थात्मक विश्लेषण :

ईस्टन व्यवस्थात्मक उपागम द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषकों की श्रेणी में सबसे प्रमुख विद्वान माने जाते हैं। इनके अनुसार राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा अन्य व्यवस्थाओं में कुछ आधारभूत सामान्य विशेषताएँ पायी जाती हैं। सबसे प्रमुख विशेषता परिवर्तनों तथा कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता है। राजनीतिक व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं की तरह 'स्वनियन्त्रित' व्यवस्था है अर्थात् इसमें ऐसे यन्त्र पाये जाते हैं जो परिवर्तन अथवा अन्य किसी कठिनाई के समय व्यवस्था में पुनः सामंजस्य बना देते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में पर्यावरण द्वारा उत्पन्न तनाव से जूझने की क्षमता पायी जाती है। यह बात अलग है कि इस क्षमता का प्रयोग प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था एक समान रूप से नहीं कर पायी है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था में पुननिर्वेशन के यन्त्र पाये जाते हैं जोकि व्यवस्था को सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रकृति की सूचनाएँ देते रहते हैं। ये यन्त्र व्यवस्था में निर्णयों के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रिया की सूचना भी देते रहते हैं।

डेविड ईस्टन ने अपनी पुस्तक **ए सिस्टम ऐनेलिसिस ऑफ पॉलिटिकल लाइफ (1965)** में राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन इस उपागम द्वारा दिया है। आप टालकट पारसंस से अत्यधिक प्रभावित रहे, जिन्होंने समाजशास्त्र में 'सामाजिक व्यवस्था' के संप्रत्यय को यथाविधि सैद्धान्तिक रूप से विकसित किया। ईस्टन के अनुसार व्यवस्थात्मक उपागम वह "विश्लेषणात्मक ढाँचा (अथवा सिद्धान्त) है जो यह व्याख्या करता है कि कोई व्यवस्था केवल अपने–आपको बनाये रखकर ही नहीं अपितु अगर आवश्यक हो तो पर्यावरण के तनाव के प्रति अपनी संरचना का अनुकूलन करके भी अपना अस्तित्व कैसे बनाये रखती है।

राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का ही एक भाग है जो इसके सभी प्रकार्यो में किसी न किसी रूप में योगदान देती है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार से ली गई कुछ अन्तःक्रियाओं अथवा प्रक्रियाओं की एक व्यवस्था है जिसके माध्यम से मूल्य–प्रधान वस्तुओं का समाज में प्राधिकृत रूप से विनियोजन होता है। प्राधिकारिक से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो सत्ता में हैं तथा जो किसी भी बात को अपने निर्णयों द्वारा मनवा सकते हैं। मूल्य–प्रधान का अर्थ यहाँ विचारों एवं विश्वासों से न होकर 'टोकन ऑफ प्राइस' से है अर्थात् मूल्यों से परितोषण तथा दण्ड का बोध होता है। राजनीतिक व्यवस्था मूल्य–प्रधान वस्तुओं का विनियोजन ऐसे व्यक्तियों द्वारा करवाती है। जिनके पास सत्ता होती है।

राजनीतिक व्यवस्था के चारों सम्पूर्ण पर्यावरण पाया जाता है जोकि दो प्रकार का होता है : (1) समाज अंतर्गत तथा (2) समाजबाह्य। प्रथम प्रकार के पर्यावरण के प्रमुख तत्व समाज के अन्दर पायी जाने वाली पारिस्थितिकीय व्यवस्था, जैविकीय व्यवस्था, व्यक्तिगत व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था है जबकि



Scanned with CamSc

द्वितीय प्रकार के पर्यावरण अर्थात् समाजबाह्य पर्यावरण के प्रमुख तत्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय पारिस्थितिकीय–व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था है।

राजनीतिक व्यवस्था एक गतिशील एवं खुली व्यवस्था है जिस पर पर्यावरण (समाजान्तर्गत तथा समाजबाह्य) के अनेक कारक प्रभाव डालते हैं अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था को पर्यावरण द्वारा निरन्तर चुनौतियाँ मिलती रहती हैं। ये चुनौतियाँ माँग (Demands) तथा समर्थन (Support) के रूप में होती हैं। माँग विचारों की एक अभिव्यक्ति है जिसका एक निश्चित विषय–वस्तु के सम्बन्ध में प्राधिकृत रूप से विनियोजन किया भी जा सकता है अथवा नहीं भी। माँग रखी जाने के बाद इनका जनचेतन के रूप में समर्थन होता है तथा ये माँगे मानवीय माँगों के सन्धियोजन के रूप में वृद्धि करती हैं। तत्पश्चात् ये माँगे विशिष्ट मुद्दों के रूप में गठित होकर विकसित होती हैं। अन्त में ये माँगें प्राधिकृत निर्णयों द्वारा निर्गतन अवस्था तक पहुँचती हैं। माँगों के लिए ईस्टन ने निवेशन तथा प्राधिकृत निर्णयों के लिए निर्गतन शब्दों का प्रयोग किया है।

माँगें, चाहे अधिक हों अथवा कम, राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था एक निश्चित अवधि में अनेकों माँगों को नियन्त्रित कर भी सकती है अथवा नहीं भी। राजनीतिक व्यवस्था में अपना एक यन्त्र होता है जिसके द्वारा वह माँगों को पीछे धकेल सकती है अथवा उनको उचित सीमा तक पूरा कर सकती है।

ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की चार प्रकार की नियन्त्रण की उपव्यवस्थाओं का उल्लेख किया है :

1. वे अवस्थाएँ जोकि राजनीतिक व्यवस्था की सीमाओं पर चौकीदारी का कार्य करती हैं। ये माँगों के बहाव को राजनीतिक व्यवस्थाओं में प्रविष्ट होने पर रोक लगाती हैं तथा माँगों के साथ सन्धियोजन का कार्य करती हैं।
2. राजनीतिक व्यवस्था में कुछ ऐसी सांस्कृतिक उपव्यवस्थाएँ एवं सामाजिक सांस्कृतिक आदर्श होते हैं जो माँगों की प्रभावक शक्ति की जाँच करते हैं।
3. राजनीतिक व्यवस्था संचार व्यवस्था के जाल के माध्यम से माँगों का परिसंचरण कर सकती है।
4. अन्त में राजनीतिक व्यवस्था माँगों को काट–छाँट करके एक विशिष्ट रूप प्रदान करती है जिसके बिना माँगें परिवर्तन प्रक्रिया से सही प्रकार से नहीं गुजर सकतीं।

माँगों के साथ–साथ माँगों का समर्थन भी होता है जोकि निवेशन है। राजनीतिक व्यवस्था माँगों को इस प्रकार प्राधिकारिक निर्णयों में परिवर्तित कर देती है जिससे माँग करने वाले सन्तुष्ट हो जायें। जिन प्राधिकृत निर्णयों से किसी राजनीतिक व्यवस्था के अधिकांश सदस्य असंतुष्ट होंगे, वे निर्णय उस व्यवस्था के प्रति आस्था में कमी लायेंगे। माँगों का प्राधिकृत निर्णयों में परिवर्तन निर्गतन कहलाता है तथा वह प्रक्रिया जिसके द्वारा ऐसा होता है उसे परिवर्तन क्रियाविधि (Conversion mechanism) कहा जाता है। कालान्तर में इन निर्गतनों द्वारा भविष्य के निवेशनों का निर्धारण होता है अर्थात् प्राधिकारिक निर्णय समय के साथ पर्यावरण में फिर से नवीन माँगें उत्पन्न करते हैं। इसे पुनर्निवेशन (Feedback) प्रक्रिया कहा जाता है। इस प्रकार निर्गतन ही राजनीतिक व्यवस्था के अन्तिम बिन्दु नहीं हैं। वास्तव में, ये व्यवस्था में पुनः वापस चले जाते हैं तथा व्यवस्था के आगामी व्यवहार का आधार प्रदान करते हैं। इसी दृष्टिकोण द्वारा राजनीतिक प्रक्रिया को व्यवहारों की एक निरन्तर एवं अन्तःसम्बन्धित प्रक्रिया कहा गया है। पुनर्निवेशन एक गतिशील प्रक्रिया को व्यवहारों की एक निरन्तर एवं अन्तःसम्बन्धित प्रक्रिया कहा गया है। पुनर्निवेशन एक गतिशील प्रक्रिया हैं जिसे राजनीतिक व्यवस्था के बहाव प्रतिरूप के रूप में जाना जा सकता है।

ईस्टन का व्यवस्थात्मक उपागम आमण्ड के संरचनात्मक–प्रक्रियात्मक उपागम से अधिक व्यापक है तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं व्यवहार के विश्लेषण में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें इन्होंने



Scanned with CamScanner

तनाव एवं पुनर्निवेशन जैसे संप्रत्ययों को सम्मिलित करके इसे अधिक गतिशील बना दिया है। इस उपागम से राजनीतिक परिवर्तन तथा विकास को समझने के भी सफल प्रयास किए गए हैं। इस उपागम को जान–बूझ कर इस प्रकार का बनाया गया है कि यह किसी विशेष प्रकार की व्यवस्थाओं से आबद्ध नहीं हो पाया है, अपितु इससे राजनीतिक समाजशास्त्र में तुलनात्मक विश्लेषण को नवीन अन्तर्दृष्टि मिली है। इसे राजनीतिक विश्लेषण के सिद्धान्तों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

यद्यपि ईस्टन के व्यवस्थात्मक उपागम द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के विश्लेषण की आलोचना अनेक कारणों से की गई परन्तु फिर भी इसकी उपयोगिता किसी भी प्रकार से कम नहीं होती है। इस उपागम द्वारा क्योंकि अधिक आनुभविक अध्ययन नहीं किये गये हैं, अतः इस पर आसानी से निश्चित आरोप नहीं लगाये जा सकते। फिर भी, ईस्टन के विश्लेषण में व्यवस्थात्मक उपागम की अनेक सामान्य कमियाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं–**प्रथम,** यह उपागम संतुलित अस्तित्व को अत्यधिक महत्व देता है जोकि राजनीतिक परिवर्तन की दृष्टि से मूलभूत नहीं है। **द्वितीय,** इस उपागम द्वारा उन इकाइयों अथवा तत्वों का विश्लेषण नहीं किया जा सकता जोकि वास्तव में गैर–राजनीतिक हैं परन्तु माँगों को प्रस्तुत करने में तथा उनके प्रति समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **तृतीय,** इस उपागम द्वारा आकस्मिक तथा क्रान्तिकारी परिवर्तनों की व्याख्या नहीं दी जा सकती क्योंकि इन परिवर्तनों को परिवर्तन–यंत्र द्वारा नियन्त्रित करना कठिन हो सकता है। **चतुर्थ,** इस उपागम द्वारा राजनीतिक शक्ति जैसे संप्रत्यय की पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती तथा मतदान जैसे व्यावहारिक राजनीतिक पहलुओं को नहीं समझा जा सकता।

कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि यह उपागम राजनीतिक समाजशास्त्र में सार्वभौमिक एवं सामान्य सिद्धान्त सम्बन्धी आधारभूमि के निर्माण का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसने राजनीतिक समाजशास्त्र को व्यावहारिक बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

### 1.3.4 व्यवहारवादी उपागम : (Behavioural Approach)

व्यवहारवादी या व्यवहारात्मक उपागम आज राजनीतिक समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र में सर्वाधिक प्रचलित एवं बहुचर्चित उपागम कहा जा सकता है जो कि मानव–व्यवहार के संप्रत्यय को प्रतिष्ठित करता है। इस उपागम का विकास सावयव, स्वरूपवादी, संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक, आदर्शात्मक तथा संघर्षात्मक उपागमों के विरोध में हुआ है। यह उपागम संविधान के अनुच्छेदों अथवा आदर्शों के अध्ययन की अपेक्षा व्यक्तियों के व्यवहार (राजनीतिक व्यवहार सहित) के अध्ययन पर बल देता है, चाहे वे व्यक्ति शासित वर्ग के हों या शासक वर्ग के। इसमें व्यक्तियों के व्यवहार की तुलना भी की जाती है तथा यह आनुभविक एवं वैज्ञानिक अध्ययनों पर बल देता है। आमण्ड, दहल, ईस्टन, दुत्श, लैसवेल, की, पोम्पर, टूमैन इत्यादि इनेक विद्वान इस उपागम के समर्थक हैं।

राजनीतिशास्त्र में व्यवहारवादी उपागम को एक आन्दोलन के रूप में माना गया है जिसे विविध प्रकार के नामों जैसे 'व्यवहारवादी अनुनय तथा 'सफल विरोध' से जाना जाता है। यह आन्दोलन राजनीतिकशास्त्र पर समाजशास्त्र के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण बीसवीं शताब्दी के शुरू में प्रारम्भ हुआ तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीतिक समाजशास्त्र विषय के विकास के साथ ही साथ इसे इसमें तथा राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण उपागम के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

रॉबर्ट ए. दहल ने इसे राजनीतिशास्त्रियों (मुख्य रूप से अमरीकी राजनीतिशास्त्री) द्वारा अपने विषय के प्रति एक विद्रोही आन्दोलन के रूप में देखा है जोकि राजनीतिशास्त्र में प्रयुक्त किये जाने वाले ऐतिहासिक, दार्शनिक, वर्णनात्मक–संस्थागत उपागमों की उपलब्धियों के प्रति असंतुष्ट थे तथा जिनका यह भी विश्वास था कि राजनीतिक स्थितियों व प्रघटनाओं को क्रमबद्ध रूप से समझने के लिए अन्य विधियाँ



Scanned with CamSc

तथा उपागम उपलब्ध हैं या उनका विकास किया जा सकता है। इस आन्दोलन का उद्देश्य राजनीतिक अध्ययनों को आधुनिक समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, नृविज्ञान तथा अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, विधियों, निष्कर्षो तथा दृष्टिकोणों के अधिक नजदीक लाना तथा राजनीतिशास्त्र के आनुभविक घटक को अधिक वैज्ञानिक बनाना था। दहल के शब्दों में, इसका उद्देश्य 'सरकार की सभी घटनाओं का व्यक्तियों के प्रेक्षित एवं प्रेक्षणमूलक व्यवहार के रूप में वर्णन करना है' ताकि राजनीतिक जीवन सम्बन्धी चिरस्थायी समस्याओं की पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या की जा सके।

डेविड टूमैन के अनुसार व्यवहारवादी उपागम की दो प्रमुख माँगें हैं : (अ) अनुसन्धान व्यवस्थित होना चाहिए; तथा (ब) इसमें मुख्य रूप से आनुभविक विधियों को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। व्यवस्थित अनुसंधान से अभिप्राय प्राक्कलनाओं की परिशुद्ध प्रस्तावनाएँ देना तथा प्रमाणों को यथातथ्य व्यवस्थित करना है। साथ ही, इन्होंने अशोधित अनुभववाद अथवा ऐसी प्राक्कल्पना, जिसका आनुभविक परीक्षण नहीं किया जा सकता है, तथा आनुभविक विधियों में भेद करने पर भी बल दिया है।

डेविड ईस्टन ने व्यवहारवादी आन्दोलन की आठ मान्यताओं एवं उद्देश्यों का उल्लेख किया है जिन्हें व्यवहारात्मक उपागम की बौद्धिक आधारशिलाएँ कहा जा सकता है, ये निम्नांकित हैं :

(1) **नियमितताएँ** : व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों का यह विश्वास है कि राजनीतिक व्यवहार में कुछ समानताएँ पायी जाती हैं जिनकी व्याख्या सामान्यीकरण तथा सिद्धान्तों के रूप में की जा सकती है तथा जिनकी सहायता से राजनीतिक स्थितियों एवं प्रघटनाओं को समझा जा सकता है तथा इनके बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। ईस्टन ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया हे कि यद्यपि राजनीतिक व्यवहार अनेक कारणों से प्रभावित होता है तथा सदा समान नहीं है, फिर भी व्यक्तियों को विभिन्न परिस्थितियों में कुछ पहलुओं के संदर्भ में समान रूप से व्यवहार करते देखा गया है। मतदान व्यवहार इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है।

(2) **सत्यापन** : व्यवहारवादी उपागम की दूसरी मान्यता यह है कि ज्ञान तभी प्रमाणित हो सकता है जबकि इसे ऐसी प्रस्तावनाओं के रूप में परिसीमित कर दिया जाए जिनकी आनुभविक रूप से परीक्षा की जा सके और प्रेक्षण पर आधारित प्रमाण एकत्रित किये जा सकें।

(3) **प्रविधियाँ** : व्यवहारवादी उपागम आँकड़े संकलित करने तथा इनके निर्वचन के लिए आनुभविक एवं संशुद्ध प्रविधियों के प्रयोग पर बल देता है ताकि वस्तुनिष्ठ रूप से प्रघटनाओं एवं व्यवहार को समझा जा सके। कुछ प्रविधियों जैसे बहुचर विश्लेषण, प्रतिदर्श, सर्वेक्षण, गणितीय आदर्शो, इत्यादि द्वारा वैध, विश्वसनीय तथा तुलनात्मक आँकड़े संकलित किये जा सकते हैं।

(4) **परिमाणन** : व्यवहारवादी उपागम के समर्थक मापन तथा परिमाणन के महत्व को स्वीकार करते हैं। राजनीतिक जीवन की जटिलताओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुणात्मक आँकड़ों की अपेक्षा परिमाणात्मक आँकड़ों का संकलन तथा इनका परिशुद्ध मापन अनिवार्य है।

(5) **मूल्य** : व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों की यह भी मान्यता है कि राजनीतिक प्रघटनाओं एवं व्यवहार का अध्ययन मूल्यों के प्रति तटस्थ रहकर किया जा सकता है। मूल्य तथा तथ्य दो विभिन्न बातें हैं तथा विश्लेषण की दृष्टि से इन्हें पृथक् माना जाना चाहिये। डेविड डब्लू. मिनार ने भी इन्हें पृथक् मानने पर बल दिया है। इन दोनों का अध्ययन पृथक् रूप से अथवा संयुक्त रूप से हो सकता है, परन्तु इन्हें एक–दूसरे से मिलना उचित नहीं है। वैज्ञानिक अनुसंधान वस्तुनिष्ठ होने के लिए मूल्यों से स्वतंत्र होना चाहिए तथा अनुसंधानकर्त्ता को अध्ययन करते समय अपने व्यक्तिगत अथवा नैतिक मूल्यों के प्रति तटस्थ रहना चाहिए।

(6) **व्यवस्थापनः** व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों का यह दावा है कि राजनीतिक समाजशास्त्र में व्यवस्थित अनुसंधान सम्भव है। व्यवस्थित अथवा क्रमबद्ध रूप से इनका तात्पर्य सिद्धान्त–निर्देशित



Scanned with CamSc

एवं सिद्धान्ताभिमुख अनुसंधान से है जिसमें अनुसंधान को व्यवस्थित ज्ञान के परस्पर सम्बन्धित अंग माना गया है। व्यवहारवादियों का उद्देश्य कार्य–कारण सम्बन्धों के आधार पर सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करना है अर्थात् परस्पर सम्बन्धित राजनीतिक घटनाओं के सम्बन्ध में सामान्य नियमों की खोज करना है।

(7) **विशुद्ध विज्ञान** : व्यवहारवादी उपागम विशुद्ध विज्ञान में विश्वास करने पर बल देता है। यद्यपि इन लोगों का यह विचार है कि अनुप्रयुक्त अनुसंधान (जिसका उद्देश्य व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करना है) तथा विशुद्ध अनुसंधान (जिसका उद्देश्य व्यवस्थित एवं व्यवहारात्मक ज्ञान में वृद्धि करना है); वैज्ञानिक उद्यम में परस्पर सम्बन्धित हैं, फिर भी इन्होंने विशुद्ध अनुसंधान को अधिक महत्वपूर्ण माना है।

(8) **समाकलनः** व्यवहारवादी उपागम के समर्थक विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में समाकलन (एकीकरण) पर बल देते हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है तथा उसकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य गतिविधियों में अंतर किया जा सकता है, परन्तु किसी एक को समझने के लिए दूसरी गतिविधियों का ज्ञान होना अनिवार्य है। अतः राजनीतिक प्रघटनाओं को समझने के लिए आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा अन्य प्रघटनाओं को समझना जरूरी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यवहारात्मक उपागम के समर्थक अन्तःशास्त्रीय उपागम को अधिक महत्व देते हैं।

व्यवहारवादी उपागम की इन मान्यताओं को परम्परावादी राजनीतिशास्त्री स्वीकार नहीं करते तथा ईस्टन ने इन्हीं मान्यताओं के आधार पर व्यवहारात्मक एवं परम्परागत उपागमों में अन्तर समझाने का भी प्रयास किया है।

युलाउ ने व्यवहारवादी उपागम की चार विशेषताएँ बतायी हैं :

1. यह व्यक्तियों और सामाजिक समूहों के व्यवहार का विश्लेषण करता है।
2. यह सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजशास्त्र और सांस्कृतिक नृविज्ञान से विषय–संदर्भ लेकर अनुसंधान एवं सिद्धान्त का विकास करता है।
3. यह अनुसंधान और सिद्धान्त की पारस्परिक आत्मनिर्भरता में विश्वास करता है तथा इस बात पर बल देता है कि तथ्य सिद्धान्त की ओर तथा सिद्धान्त तथ्य की ओर जाने चाहिए।
4. यह मान्य विश्वसनीय तथा परिशुद्ध प्रविधियों और पद्धतियों द्वारा तथ्यों के संकलन को महत्व प्रदान करता है।

आज व्यवहारवादी आंदोलन अपने अगले चरण उत्तर–व्यवहारवादी अवस्था की ओर बढ़ गया है। यह एक प्रकार के व्यवहारवादी उपागम की उपलब्धियों और विशेषताओं को बनाये रखकर समाज की तात्कालिक समस्याओं, संकटों और चुनौतियों का अध्ययन करने तथा उनके समाधान की माँग करता है। इसलिये इसे परम्परावाद का पुनरूत्थान नहीं समझना चाहिये।

व्यवहारवादी उपागम ने राजनीतिक समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा राजनीतिशास्त्र के परम्परागत स्वरूप को पूरी तरह से बदलकर उसे अन्य सामाजिक विज्ञानों के समान स्तर पर लाने में सहायता दी है। इससे सामाजिक विज्ञानों में समाकलन बढ़ा है तथा अन्तःशास्त्रीय उपागम द्वारा विविध प्रकार की स्थितियों एवं प्रघटनाओं को समझने में रूचि निश्चित रूप से अधिक होती जा रही है। ईस्टन के अनुसार यह उपागम 'सम्पूर्ण सामाजिक विज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त के समारम्भ का सूचक है। यह समाज के विभिन्न परिवर्तनशील अवबोधक उपागमों की एक लम्बी पंक्ति में एक नूतन विकास है।' वर्मा ने इस उपागम की उपलब्धियों की विवेचना दो क्षेत्रों–(अ) सिद्धान्तों का निर्माण; तथा (ब) अनुसंधान की प्रविधियों के संदर्भ में की है। इनका विचार है कि अगर हम



Scanned with CamSc

1960–1970 के दशक की उपलब्धियों को भी सामने रखें तो ऐसा आभास होता है कि व्यवहारवाद दो आंदोलनों–सैद्धान्तिक तथा तकनीकी के रूप में विकसित हुआ है, परन्तु तकनीकी आंदोलन सैद्धान्तिक आंदोलन से काफी आगे निकल गया है।

व्यवहारवादी उपागम ने अनुसंधान की प्रविधियों एवं यंत्रों को विकसित करने एवं उन्हें अधिक सटीक बनाने में विशेष योगदान दिया है। अन्तर्वस्तु विश्लेषण, केस विश्लेषण, साक्षात्कार एवं प्रेक्षण तथा सांख्यिकी के क्षेत्र में इसका योगदान अद्वितीय रहा है। इसमें परिवर्तन अग्रवर्णित प्रकार से समझा जा सकता है।

| क्षेत्र | परिवर्तन | |
|---|---|---|
| | से | को |
| अन्तर्वस्तु विश्लेषण | गुणात्मक | परिमाणात्मक |
| केस विश्लेषण | विशिष्ट | तुलनात्मक |
| साक्षात्कार तथा प्रेक्षण | अनियमित मतदान एवं पत्रकारों की तरह साक्षात्कार | प्रतिदर्श सर्वेक्षण, गहन साक्षात्कार एवं पेनल अध्ययन, अनुमापन प्रविधियाँ, प्रयोगात्मक अध्ययन |
| सांख्यिकी | एक–चरीय विश्लेषण | बहुचरीय विश्लेषण |

व्यवहारवादी उपागम ने प्रविधियों के विकास के साथ ही साथ परम्परागत राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र के अनेक मूल संप्रत्ययों को भी परिवर्तित कर दिया है जिसे पुलपरांपिल ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया है :

| परम्परागत राजनीतिशास्त्र | व्यवहारात्मक राजनीतिशास्त्र |
|---|---|
| राज्य | राजनीति व्यवस्था |
| अधिकार | प्रकार्य |
| पद | भूमिकाएँ |
| संस्थाएँ | संरचनाएँ |
| शक्ति | क्षमता |
| सार्वभौमत्व | स्वायत्तता |
| जनमत | राजनीतिक संस्कृति |
| नागरिक प्रशिक्षण | राजनीतिक समाजीकरण |

सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में व्यवहारवादी उपागम का योगदान तकनीकी विकास की अपेक्षा कम रहा है। व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों ने अन्य उपागमों जैसे संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक, व्यवस्थात्मक, निवेशन–निर्गतन, निर्णय सिद्धान्त, क्रीड़ा, सिद्धान्त, क्षेत्र प्रतिरूप इत्यादि का बखूबी विवेचन किया है, परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि इन्हें रूपावली, संप्रत्ययात्मक ढाँचा, उपागम अथवा सिद्धान्त में से क्या कहा जाये। फिर भी, अधिकतर विद्वान इस बात से सहमत हैं कि सिद्धान्त–निर्माण की दिशा में अभी कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल पायी है।

व्यवहारवादी उपागम की आलोचना अनेक दृष्टियों से की गयी है। आलोचना के कतिपय प्रमुख बिन्दु निम्नांकित हैं :

1. व्यवहारवादी उपागम की सहायता से यद्यपि अनुसंधान की कार्य–पद्धति, प्रविधियों एवं यंत्रों के विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता मिली है, फिर भी इसने विद्वानों को राजनीतिक समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र की विषय–वस्तु से विमुख कर दिया। विभिन्न विद्वान इसके प्रभाव



Scanned with CamSc

के अन्तर्गत समाज की तात्कालिक समस्याओं, संकटों एवं चुनौतियों का अध्ययन करने तथा उनके समाधान ढूँढ़ने की अपेक्षा अनुसंधान की कार्य–पद्धति को विकसित करने में ही लगे रहे।

2. व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों का राजनीति के विज्ञान को विशुद्ध विज्ञान बनाने का दावा भी अधिक उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि वे कार्य–पद्धति में सुधार के बावजूद राजनीतिक व्यवहार एवं राजनीतिक प्रघटनाओं के बारे में कोई सामान्य सिद्धान्त बनाने में सफल नहीं रहे हैं।

3. व्यवहारवादी उपागम यद्यपि सामाजिक विज्ञान के समाकलन पर बल देता है, परन्तु वास्तविक यह है कि इसके द्वारा केवल सूक्ष्म अध्ययन अर्थात् छोटे समूहों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन ही सम्भव है। अगर छोटे समूहों में राजनीतिक व्यवहार एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझ भी लिया जाये, तो भी इन सूक्ष्म अध्ययनों के आधार पर सिद्धान्त का निर्माण करना कठिन है।

4. राजनीति तथ्य जटिल, संश्लिष्ट एवं परिवर्तनशील हैं तथा प्रत्यक्ष प्रेक्षण योग्य न होने के कारण प्राकृतिक या भौतिक तथ्यों से भिन्न हैं। अतः व्यवहारवादी उपागम के समर्थकों का राजनीतिशास्त्र, राजनीतिक समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष मानना एवं एक समान कार्य–पद्धति अपनाने की बात कहना उचित नहीं है।

5. व्यवहारवादी उपागम की आलोचना इस बिन्दु के आधार पर भी की गई है कि यद्यपि इसके समर्थक अपने–आपको विशुद्ध एवं मूल्य–निरपेक्ष वैज्ञानिक बताते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि वे स्वयं अनेक पूर्वाग्रहों (विशेषतया प्रजातंत्र में आस्था) एवं मूल्यों से प्रभावित हैं।

6. परम्परावादी राजनीतिशास्त्री व्यवहारवादी उपागम की मान्यताओं एवं उद्देश्यों से भी असहमत हैं। इनका कहना है कि राजनीतिक प्रघटनाओं की प्रकृति इतनी जटिल है कि इनका प्रत्यक्ष प्रेक्षण द्वारा वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर पाना सम्भव ही नहीं है। अधिकांश राजनीतिक मुद्दे नैतिक मूल्यों से जुड़े हैं, अतः तथ्यों को मूल्यों से पृथक् करना सम्भव नहीं है।

## 1.3.5 संघर्षात्मक उपागम :

प्रत्येक समाज में सहयोग तथा संघर्ष पाया जाता है। जहाँ सहयोग जीवन या व्यवस्था में एकरूपता, मतैक्य, एकीकरण एवं संगठन का विकास करता है, वहीं दूसरी ओर संघर्ष, दमन, विरोध व हिंसा की उत्पत्ति करता है। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक एवं व्यवस्थात्मक उपागमों में व्यवस्था के संतुलन अथवा एकात्मकता के आयामों को विशेष महत्व दिया जाता है। अतः इसके विरोध में एक अन्य उपागम विकसित किया गया है जिसे संघर्षात्मक उपागम के नाम से जाना जाता है। संघर्षात्मक उपागम में व्यवस्था में पाये जाने वाले तनाव व संघर्ष के आयामों को अधिक महत्व दिया जाता है। इस उपागम के समर्थक हमारा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हैं कि आधुनिक समाज तनाव व संघर्ष से आक्रांत है और सामाजिक जीवन में सामान्य सहमति न होकर असहमति, प्रतिस्पर्द्धा तथा स्वार्थों के संघर्ष की प्रधानता होती जा रही है। इनका विचार है कि सामाजिक तनाव एवं संघर्ष के प्रति विमुख होने के कारण संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक एवं व्यवस्थात्मक उपागम यथार्थ स्थिति को समझने में सहायक नहीं हैं। सिमेल, कोजर, मार्क्स, डेहरेन्डोर्फ, गालटुंग, कोलिन्स, ड्यूक, बेगहट, समनर, ओपनहीमर इत्यादि अनेक विद्वानों ने इस उपागम को समर्थन प्रदान किया है।

कोजर ने अपनी पुस्तक **दि फंक्शन ऑफ सोशल कान्फ्लिक्ट** में संघर्ष की परिभाषा इन शब्दों में दी है, 'स्थिति, शक्ति तथा सीमित साधनों' के मूल्यों अथवा अधिकारों के लिए होने वाले द्वन्द्व को संघर्ष कहा जाता है जिसमें संघर्षरत समूहों का उद्देश्य न केवल मूल्यों को प्राप्त करना है बल्कि अपने प्रतिद्वन्द्वियों को प्रभावहीन करना, हानि पहुँचाना अथवा समाप्त करना भी है। इनका कहना है कि संघर्ष समूह अंतर्गत व्यक्तियों में, व्यक्ति तथा समूह में अथवा विभिन्न समूहों के मध्य हो सकता है।



Scanned with CamScanner

संघर्ष उपागम के तीन प्रमुख स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किये गये हैं : **(1) संघर्ष रूपावली,** जिसमें इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्ति (अथवा समूह) सीमित साधनों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष करने में लगे रहते हैं; **(2) संघर्ष–प्रघटना की व्याख्या,** जिसमें यह तर्क स्वीकार किया गया है कि समाज में संघर्ष स्थानिक है तथा इसके कारणों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है; तथा **(3) संघर्ष एक कार्य–प्रणाली के रूप में,** जिसमें संघर्ष को एक कार्य–प्रणाली अथवा राजनीतिक दाँव–पेच के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि ज्ञान कार्यवाही की माँग करता है जो कि सामान्यतः उग्र उन्मूलनवादी होती है।

डेहरेन्डोर्फ ने संघर्ष को एक अनिवार्य सामाजिक तथ्य बताया है, क्योंकि आज के औद्योगिक समाज में सम्पूर्ण सामाजिक जीवन हितों एवं स्वार्थों से प्रेरित होता है जो कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक–दोनों क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। इन्होंने संघर्ष उपागम में निम्नांकित चार विशेषताओं को महत्वपूर्ण माना है।

1. प्रत्येक समाज सदैव परिवर्तन की प्रक्रियाओं के अधीन रहता है, सामाजिक परिवर्तन सर्वव्यापी हैं।

अन्य विद्वानों ने कार्ल मार्क्स की वर्ग–संघर्ष की धारणा की आलोचना की है। इन विद्वानों का मत है कि केवल आर्थिक हित ही व्यवस्थाओं के परिवर्तन में निर्णायक नहीं हैं। यह संघर्ष सत्ता के नियन्त्रण अथवा विचारों के नियंत्रण पर भी हो सकता है। अनेक देशों में राजनीतिक आंदोलन, बेरोजगारी के कारण नहीं हुए अपितु राजनीतिक स्वतंत्रता या धार्मिक एवं शैक्षणिक समस्याओं के लेकर हुए हैं। साथ ही वर्ग–संघर्ष को वर्तमान समाजों का आधार–मानना अनुचित है। अतः स्पष्ट है कि मार्क्स का वर्ग–संघर्ष का विश्लेषण राजनीतिक प्रघटनाओं की सटीक व्याख्या नहीं करता।

डेहरेन्डोर्फ की आधुनिक औद्योगिक समाज में संघर्ष की व्याख्या मार्क्सवाद का वेबर और मिचेल्स के कुछ विचारों से संयोजित आधुनिक स्वरूप ही है जिसमें उनके अपने महत्वपूर्ण एवं मौलिक योगदान की भी अपेक्षा नहीं की जा सकती है। इनके अनुसार समाज की बाध्यकारी प्रकृति सत्ता सम्बन्धों को बढ़ावा देती है जिसके परिणामस्वरूप भूमिका–हितों पर आधारित संगठित संघर्ष–समूह विकसित होते हैं, इसलिए जहाँ कहीं भी संगठन होगा, वहीं पर संघर्ष की सम्भावना भी रहेगी। उनके अनुसार सामाजिक जीवन स्वाभाविक रूप से संघर्षात्मक है। डेहरेन्डोर्फ के विचारों को संघर्ष रूपावली तथा संघर्ष का सिद्धान्त दोनों माना जा सकता है। संघर्ष उपागम का विकास यद्यपि मुख्य रूप से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए किया गया है, परन्तु यह संघर्ष की अन्य परिस्थितियों को समझने में भी सहायक है। इसके द्वारा हम मौलिक संघर्ष–स्थितियों के वर्गीकरण, समाजीकरण और शिक्षण, क्रान्तिकारी और संधि परिस्थितियों, शक्ति के आदर्शों और व्यवस्थाओं से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की अन्य समस्याओं का भी अध्ययन कर सकते हैं।

जहाँ पर संघर्ष उपागम विविध प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन में उपयोगी सिद्ध हुआ है, वहीं पर यह उपागम अन्य उपागमों की तरह पूर्णतया दोषरहित नहीं है। इसमें सामाजिक वास्तविकता के केवल एक पक्ष अर्थात् संघर्ष एवं विरोध पर ही अत्यधिक बल दिया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप इस दृष्टिकोण के समर्थक अध्ययन परिस्थितियों में पायी जाने वाली एकता की उपेक्षा करते हैं तथा जहाँ पर संघर्ष विद्यमान ही नहीं है, वहाँ पर भी संघर्ष को खोज निकालने का प्रयास करते हैं।

भारतीय समाज में संघर्ष उपागम द्वारा अधिक अध्ययन नहीं हुए हैं, अतः भारतीय समाज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता एवं व्यावहारिकता के बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है। अधिकांश भारतीय विद्वानों ने संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम को ही अपनाया है। संघर्ष उपागम की उपयोगिता वर्तमान भारतीय समाज के संदर्भ में बढ़ती जा रही है तथा अन्य उपागमों की तरह निश्चित रूप से यह भी उपयोगी सिद्ध होगा।



Scanned with CamScanner

संघर्षात्मक उपागम संगठनवादी उपागमों (संरचनात्मक–प्रकार्यत्मक तथा व्यवस्थात्मक) से बिल्कुल उल्टा है। पहले में विश्लेषण राष्ट्रीय एकता, राजनीति की आत्म–निर्भरता और वर्ग–सहयोग पर आधारित है जबकि दूसरे प्रकार के उपागमों में विश्लेषण राजनीति के सामाजिक–आर्थिक आधार, श्रेणी–संघर्ष की अनिवार्यता और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बद्धता के सिद्धान्तों पर टिका हुआ है। संघर्षात्मक उपागम हितों और स्वार्थो, प्रलोभन और दमन, विभेदीकरण और भेदभाव, विरोध एवं तनाव, सामाजिक व्यवस्था में असंगठन और आन्तरिक विरोध पर बल देता है जबकि संगठनवादी उपागम सामाजिक जीवन में पाये जाने वाले आदर्शो और मूल्यों, वचनबद्धता, संगठन और एकता, पारस्परिकता और सहयोग तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के संगठन और एकीकरण को अधिक महत्व प्रदान करता है।

राजनीतिक समाजशास्त्र में प्रयुक्त किये जाने वाले कतिपय प्रमुख उपागमों की संक्षिप्त विवेचना से हमें यह पता चलता है कि प्रत्येक उपागम में अध्ययन समस्या के विशेष पहलू के विश्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है, इसलिए आज एक से अधिक उपागमों को एक साथ प्रयोग में लाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

## 1.4 राजनीतिक व्यवस्था व समाज का अन्तर्सम्बन्ध :

समाजशास्त्र सभी सामाजिक शास्त्रों की जड़ है। समाजशास्त्र सामाजिक समुदायों, जीवन, विचारों, संगठन इत्यादि का क्रमबद्ध ज्ञान है। यह सामाजिक जीवन के तमाम पहलुओं का अध्ययन करता है। सामाजिक जीवन के पहलुओं में आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी पहलू शामिल हैं, समाजशास्त्र इनके मूल तत्वों का अध्ययन करता है।

19वीं शताब्दी में समाजशास्त्र के जन्मदाता काम्टे ने समाज के अध्ययन को विभिन्न शास्त्रों में बांटने के बजाय केवल एक ही शास्त्र, समाजशास्त्र के अन्तर्गत रखने का सुझाव दिया। किन्तु 19वीं शताब्दी के अन्त तथा 20वीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न सामाजिक शास्त्र अस्तित्व में आये। समाजशास्त्र से इनका सम्बन्ध अवश्य है, क्योंकि समाजशास्त्र समाज के तमाम पहलुओं का मूलभूत अध्ययन करता है, जबकि समाज के अलग–अलग पहलुओं का अध्ययन करने वाले शास्त्र केवल एक पहलू का गहराई से अध्ययन करते हैं। अतः हर सामाजिक शास्त्र समाजशास्त्र का ही अंग मात्र है। समाजशास्त्र मानव के राजनीतिक पहलू का भी अध्ययन करता है क्योंकि यह उसके सामाजिक जीवन का एक पहलू है, इसलिए राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र का आपसी सम्बन्ध है। जो सम्बन्ध राज्य तथा समाज में है, वही सम्बन्ध राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र में है राज्य समाज की सेवा करने वाली या समाज के एक वर्ग की सेवा करने वाली संस्था मानी जाती है और यह समाज के विकास की एक निश्चित दशा में उभरती है। अतः समाज के विकास के नियमों को जाने बिना राजनीतिशास्त्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

पिछले 30–35 वर्षों में राजनीति में व्यवहारवाद के विकास के साथ–साथ समाजशास्त्र का राजनीतिशास्त्र पर काफी प्रभाव बढ़ गया है। मानव का राजनीतिक व्यवहार समाज की परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित होता है। राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए नागरिकों का राजनीतिक समाजीकरण तथा समाज की राजनीतिक संस्कृति एवं परम्पराएं जानना आवश्यक है। इसलिए समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति को बहुत हद तक राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में लगाया गया है। व्यवहारवाद के उदय से राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र काफी नजदीक आ गए हैं और समाजशास्त्र का प्रभाव राजनीतिशास्त्र पर बढ़ा है। समाजशास्त्र का राजनीति पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि राजनीतिशास्त्र की एक नयी शाखा स्थापित कर ली गयी है। इसका नाम 'राजनीति समाजशास्त्र' रखा गया है। यह कहा जाता है कि आजकल राजनीति का समाजीकरण और समाज का राजनीतिकरण हो गया है, इस प्रकार दोनों शास्त्र एक–दूसरे में घुलमिल गये हैं। इस मिले–जुले रूप का अध्ययन राजनीतिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।



Scanned with CamScanner

इसी प्रकार आजकल कल्याणकारी राज्य के उदय हो जाने की वजह से राज्य तथा राजनीति समाज के प्रत्येक क्षेत्र में घुस गयी है। समाज के सारे सवाल, सारे पहलू किसी न किसी रूप में राज्य तथा राजनीति से जुड़ गये हैं। समाज की हर संस्था एवं संगठन राजनीति से प्रभावित होता है। इसलिए समाजशास्त्र का अध्ययन राजनीति से गहरे रूप में प्रभावित होता है। समाजशास्त्र राजनीति के अध्ययन के बिना अधूरा है क्योंकि आज समाज की हर गतिविधि राजनीति से प्रेरित रहती है।

राजनीति विज्ञान राज्य और शासन के अध्ययन का विज्ञान है। यह राज्य की उत्पत्ति, विकास और राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन कराता है। यह केवल उन्हीं तथ्यों या विषयों को राजनीतिक मानता है जो राज्य की परिधि के अन्दर घटित होती हैं। किन्तु मानव कार्यकलापों, व्यवहारों और सम्बन्धों का एक बहुत बड़ा क्षेत्र राज्य के दायरे के बाहर पड़ जाता है। राजनीतिक समाजशास्त्र ठीक ऐसे ही क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है जिसे राजनीति विज्ञान द्वारा अनदेखा कर दिया गया है।

राजनीति विज्ञान और राजनीतिक समाजशास्त्र के बीच का अन्तर बहुत कुछ समाज और राज्य के अन्तर के समतुल्य है। **बेनेडिक्स** और **लिपसेट** के शब्दों में, "जहां राजनीति विज्ञान राज्य से आरम्भ होकर इस तथ्य की छानबीन करता है कि कैसे राज्य समाज को प्रभावित करता है, राजनीतिक समाजशास्त्र समाज से आरम्भ होकर इस तथ्य की गवेषणा करता है कि कैसे समाज राज्य को प्रभावित करता है।" राजनीतिक समाजशास्त्र की यह मान्यता है कि राज्य अनेकानेक राजनीतिक संस्थाओं में से एक है और इन संस्थाओं के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन समाजशास्त्र का सामान्य विषय क्षेत्र है और राजनीतिक संस्थाओं और अन्य संस्थाओं के बीच अध्ययन राजनीतिक समाजशास्त्र का विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र है। बेनेडिक्स के अनुसार राजनीतिक समाजशास्त्र की दो विशेषताएं हैं : **प्रथम,** राजनीतिक समाजशास्त्र 'राजनीतिक' और 'सामाजिक' के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करता है; और **द्वितीय,** यह प्रतिपादित करता है कि 'राजनीतिक' को 'सामाजिक' के साथ सम्बद्ध किये बिना राजनीति को नहीं समझा जा सकता। 'राजनीति का समाजशास्त्र' स्पष्ट रूप से समाजशास्त्र का एक उपक्षेत्र है। यह राजनीति का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन है।

सारटोरी का अभिमत है कि मनुष्य केवल एक राजनीतिक प्राणी ही नहीं बल्कि एक सामाजिक प्राणी भी है। अपने राजनीतिक क्रियाकलापों के अतिरिक्त उसका अपना एक गैर–राजनीतिक कार्यक्षेत्र भी है और उसके ये दोनों कार्यक्षेत्र एक–दूसरे से अलग–अलग नहीं हैं बल्कि अन्तःसम्बद्ध हैं। यह समझे बिना कि गैर–राजनीतिक कार्यकलाप कैसे राजनीतिक कार्यकलापों को प्रभावित करते हैं, राजनीतिक गतिविधियों, कार्यकलापों और प्रक्रियाओं को सही ढंग से नहीं समझा जा सकता है।

राजनीतिक घटनाओं, तथ्यों या यथार्थताओं को समझने के लिए उनके परिमाणात्मक मापन अथवा मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। परिमाणात्मक मापन और मूल्यांकन के लिए सामाजिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं को ध्यान से देखा और परखा जाना आवश्यक है। 'राजनीतिक मनुष्य' आवश्यक रूप से अपने सामाजिक परिवेशों और उसके अपने अनुभवों की उपज होता है। 'राजनीतिक मानव' की भूमिका मात्र सांविधानिक, राजनीतिक या संस्थागत ढांचे के द्वारा ही निर्धारित नहीं होती है। 'राजनीति मानव' के साथ उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसका व्यवसाय, उसकी शिक्षा, धर्म और उसका पर्यावरण होता है। सामाजिक संरचना के इन विभिन्न परिवर्त्यों की पृष्ठभूमि में ही एक मतदाता, एक सिविल सर्वेन्ट, एक विधायक और पार्टी नेता की राजनीतिक भूमिकाओं को भली प्रकार समझा जा सकता है।

किन्तु सामाजिक संरचना भी अनेक सांस्कृतिक प्रतिबन्धों और दबावों से ग्रसित होती है और इसमें धीरे–धीरे बदलाव आता रहता है। इस बदलाव को लाने में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण की प्रमुख भूमिका है। उदाहरण के लिए, आज से सौ वर्ष पहले भारतीय समाज में पुरोहितों और मौलवियों की धार्मिक–सामाजिक भूमिका अधिक महत्वपूर्ण थी, किन्तु आज उनकी राजनीतिक भूमिका भी दृष्टव्य है। इस



Scanned with CamScanner

परिवर्तन का कारण है कि आज पुरोहित की भूमिका के निर्वाह को लेकर सामाजिक प्रत्याशाओं में भी भारी बदलाव आया है। इस तरह 'राजनीति का समाजशास्त्र' सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर 'राजनीति' के निकट आने लगा है। आज राजनीति का समाजशास्त्र राज्य से शुरू होकर राज्य के परे जाता है और अपना ध्यान वृहद् सामाजिक पहलू पर केन्द्रित करता है और इस तथ्य को उजागर करता है कि राजनीतिक क्षेत्र में जो अदृश्य है वह उसकी तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है जो कि एक राजनीतिक समाजशास्त्री का ध्यान आकर्षित करता है और इस प्रकार सारटोरी के शब्दों में 'राजनीति का समाजशास्त्र' राजनीति विज्ञान को वृहद् स्तर पर 'समाजशास्त्र' पर आश्रित बनाता है।

यह सच है कि 'राजनीतिक समाजशास्त्र' बहुत सीमा तक 'राजनीति के समाजशास्त्र' को अपने में अन्तर्निहित करता है, फिर भी यह दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। बेशक राजनीति का समाजशास्त्र उस राजनीति तक अपनी पहुंच रखता है जो सामाजिक संरचना और सामाजिक संस्कृति के तत्वों से निर्धारित होती है इस प्रकार यह राजनीति को समझने के लिए सामाजिक परिवर्त्यो पर अपना पूरा जोर देता है। किन्तु इसके परिणामस्वरूप समाजशास्त्र का राजनीति विज्ञान पर प्रभुत्व स्थापित होने का खतरा बढ़ जाता है।

राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए इतिहास अत्यन्त उपयोगी है। इतिहास ही राजनीति के सभी सिद्धान्तों तथा राजनीतिक गतिविधियों का उद्गम है। राजनीतिक घटनाओं क्रान्तियों, जन आन्दोलनों, राष्ट्रीय संग्रामों, युद्धों तथा राजनीतिक संस्थाओं, राज्यों आदि के विकास की जानकारी इतिहास के पृष्ठों में उपलब्ध है। राजनीतिशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों की परख करने में इतिहास महत्वपूर्ण सहायता करता है। कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं–शक्ति का सिद्धान्त, शक्ति संतुलन में परिवर्तन, प्रतिरोध, संघर्ष आदि। किसी भी देश के लोगों का राजनीतिक जीवन, उनकी प्रवृतियां, विचार, ध्येय, प्रतिक्रियाएं और संशय बहुत हद तक इतिहास से प्रभावित होते हैं। वर्तमान अनुभववादी सिद्धान्त इस धारणा को रीति–रिवाज और राजनीतिक संस्कृति का नाम देकर मान्यता देते हैं, परन्तु इतिहास के माध्यम से केवल रीति–रिवाज और राजनीतिक संस्कृति को ही नहीं समझा जाता। राजनीतिक प्रबन्ध, संस्थाएं, विषमताएं तथा समूह, आदि भी ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक अच्छी तरह समझे जा सकते हैं।

इसी प्रकार युद्ध, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, साम्प्रदायिकता, आदि विषयों को समझने के लिए इतिहास से पर्याप्त सहायता ली जा सकती है। इसी तरह हम अपनी राजनीतिक प्रक्रिया को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अच्छी तरह समझ सकते हैं। भारत में उदारवादी पश्चिमी लोकतान्त्रिक संस्थाएं ऐसे दौर में स्थापित की गयी। जब सामंतवाद समाप्त नहीं हुआ था और बुर्जुआ वर्ग सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन में अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार नहीं था। परिणामस्वरूप यहां कानून का शासन और उदारवादी संविधान आश्रित और आश्रयदाता के सम्बन्धों तक ही सीमित रहा है। अतः राजनीति के ऐतिहासिक परिवर्तनों को समझने के लिए वृहत् समस्याओं के विश्लेषण के लिए तथा राजनीति को दिशा निर्देश देने के लिए इतिहास का ज्ञान अनिवार्य है।

वस्तुतः इतिहास राजनीति की प्रयोगशाला है। राजनीति में प्रयोग करना बहुत मंहगा हो सकता है। अच्छा यह होता कि हम अपनी गलतियों से नहीं, बल्कि दूसरों की गलतियों तथा प्रयोगों से सीखें। इसलिए इतिहास के अध्ययन से हमें बहुत से ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं, जिनके आधार पर हम बिना भूल किये ही, दूसरों की गलतियों या प्रयोगों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

आज अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का अध्ययन एक–दूसरे से बिना जोड़े नहीं किया जा सकता। राजनीतिक व्यवस्थाओं का सम्पूर्ण अध्ययन आर्थिक व्यवस्था के विकास को देखें बिना नहीं किया जा सकता। तीसरी दुनिया के विकासशील देशों का अध्ययन उनके आर्थिक विकास की आवश्यकता के संदर्भ में ही किया जाता है। वर्ग संघर्ष में फंसे समाज में राजनीतिक स्थायित्व, मेल–मिलाप, सामंजस्य तथा



Scanned with CamScanner

सहयोग की तमाम समस्याएं आर्थिक ही हैं। राजनीति विज्ञान तथा अर्थशास्त्र के घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए चार्ल्स बियर्ड ने लिखा है, "अर्थशास्त्र के बिना राजनीति विज्ञान अवास्तविक तथा आत्परक नियम निष्ठा बनकर रह जाता है। राजनीति को समझना तथा पूर्ण ज्ञान के साथ निर्णय करना केवल तभी सम्भव जब अर्थ विषयक प्रसंगों पर गम्भीरता से विचार किया जाये।"

19वीं शताब्दी में समाजशास्त्र के जन्मदाता काम्टे ने समाज के अध्ययन को विभिन्न शास्त्रों में बांटने के बजाय केवल एक ही शास्त्र समाजशास्त्र के अन्तर्गत रखने का झुकाव दिया। किन्तु 19वीं शताब्दी के अन्त तथा 20वीं शताब्दी के आरम्भ से विभिन्न सामाजिक शास्त्र अस्तित्व में आये। समाजशास्त्र से इनका सम्बन्ध अवश्य है क्योंकि समाजशास्त्र समाज के तमाम पहलुओं का मूलभूत अध्ययन करता है जबकि समाज के अलग–अलग पहलुओं का अध्ययन करने वाले शास्त्र केवल एक पहलू का गहराई से अध्ययन करते हैं। अतः हर सामाजिक शास्त्र समाजशास्त्र का ही अंग मात्र है। समाजशास्त्र मानव के राजनीतिक पहलू का भी अध्ययन करता है क्योंकि यह उसके सामाजिक जीवन का एक पहलू है।

जो सम्बन्ध राज्य तथा समाज में है, वही सम्बन्ध राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र में है। राज्य समाज की सेवा वाली या समाज के एक वर्ग की सेवा करने वाली संस्था मानी जाती है और यह समाज के विकास की एक निश्चित दशा में उभरती है। अतः समाज के विकास के नियमों को जाने बिना राजनीतिशास्त्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

समाजशास्त्र राज्य के संगठन के बारे में जानकारी राजनीति विज्ञान से ही ग्रहण करता है। इसी प्रकार राजनीतिशास्त्र सामाजिक जीवन के तथ्यों और नियमों का अध्ययन समाजशास्त्र से ही करता है। समाजशास्त्री समूह तथा व्यक्ति के सामूहिक जीवन की प्रकृति को समझने के लिए राज्य की प्रक्रिया, राजनीतिक समूह, दलों तथा वर्गो के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। राजनीति वैज्ञानिक भी समाजशास्त्र से सामूहिक जीवन के बारे में मूल्यवान ज्ञान प्राप्त करते हैं जिसका प्रयोग वे राजनीति गुटों को समझने में करते हैं। समाजशास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करते हुए प्रो. गिडिंग्स ने लिखा है, "जिन लोगों ने समाजशास्त्र के बुनियादी सिद्धान्तों को नहीं समझा है उन्हें राजनीति विज्ञान पढ़ाना उसी प्रकार निष्फल होगा जिस प्रकार से न्यूटन के नियमों को न जानने वाले को ज्योतिष पढ़ाना।"

राजनीति विज्ञान के अध्ययन में व्यवहारवाद के विकास के साथ–साथ समाजशास्त्र का राजनीतिशास्त्र पर प्रभाव काफी बढ़ गया है। मानव का राजनीति व्यवहार समाज की परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित होता है। राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए नागरिकों का राजनीतिक समाजीकरण तथा समाज की राजनीतिक संस्कृति एवं परम्पराएं जानना आवश्यक है। इसलिए समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति को बहुत हद तक राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में उपयोगी माना जाता है।

समाजशास्त्र का राजनीति विज्ञान पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि राजनीतिशास्त्र की एक नई शाखा राजनीतिक समाजशास्त्र स्थापित कर ली गई है। यह कहा जाता है कि आजकल राजनीति का समाजीकरण और समाज का राजनीतिकरण हो गया है, इस प्रकार दोनों, शास्त्र एक–दूसरे से घुल–मिल गये हैं।

यद्यपि राजनीति विज्ञान एवं समाजशास्त्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथापि गहराई से देखने पर क्षेत्र, विषय–वस्तु, उद्देश्य, आदि के दृष्टिकोण से दोनों में अंतर दिखलायी पड़ता है–(1) समाजशास्त्र का क्षेत्र राजनीति विज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक है; (2) समाजशास्त्र राजनीति विज्ञान की अपेक्षा अधिक प्राचीन विषय है। समाजशास्त्र संगठित और अंसगठित समुदायों का अध्ययन करता है जबकि राजनीति विज्ञान केवल संगठित समुदायों का ही अध्ययन करता है; (3) राजनीति विज्ञान में केवल मनुष्यों के वैधानिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, जबकि समाजशास्त्र में वैधानिक सम्बन्धों के साथ–साथ प्रथाओं,



Scanned with CamScanner

शिष्टाचार, नैतिकता, आदि के दृष्टिकोण से भी विचार किया जाता है; (4) समाजशास्त्र का अध्ययन विषय व्यक्ति तथा समाज है और राजनीति विज्ञान का अध्ययन विषय राज्य हैं; (5) समाजशास्त्र एक वर्णनात्मक विषय है, जबकि राजनीति विज्ञान आदर्शात्मक विषय है।

संक्षेप में, समाजशास्त्र की जानकारी के बिना राजनीति विज्ञान का ज्ञान अधूरा है।

## 1.5 सारांश :

इस इकाई के अन्तर्गत हम सभी ने राजनीतिक समाजशास्त्र की रूपरेखा यथा अर्थ एवं परिभाषा विषयवस्तु के साथ–साथ विषयक्षेत्र व प्रकृति का भी अध्ययन किया है। राजनीतिक समाजशास्त्र के विशेष उपागमों जैसे–आदर्शात्मक उपागम, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, व्यवस्थात्मक उपागम, व्यवहारवादी उपागम व संघर्षात्मक उपागम आदि के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। समाज व राजनीति के अन्तर्सम्बन्धों का भी अध्ययन किया। इस प्रकार राजनीतिक समाजशास्त्र के उपर्युक्त विश्लेषणों के अध्ययन के बाद इसे बेहतर तरीके से समझा गया है।

## 1.7. बोध प्रश्न :

**बहुविकल्पीय प्रश्न :**

**प्र01.** किताब "द फंक्शन आफ सोशल कान्फ्लिक्ट" के लेखक है–

(क) कोजर (ख) मार्क्स

(ग) डाहरेनडार्फ (घ) वेबर

प्र02. पुस्तक "ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पालिटिकल लाइफ" के लेखक है–

(क) डेविस ईस्टन (ख) मार्क्स

(ग) कोजर (घ) डाहरेनडार्फ

प्र03. 'क्लास एण्ड क्लास कान्फ्लिक्ट इन एन इण्डस्ट्रियल सोसाइटी' के लेखक है–

(क) मार्क्स (ख) ईस्टन

(ग) डाहरेनडार्फ (घ) कोजर

प्र04. "माडर्न पालिटिकल थियरी" के लेखक है–

(क) एस.पी.वर्मा (ख) कोजर

(ग) ईस्टन (घ) ए.आर. बाल

प्र05. हीगेल ने किस बिन्दु पर ज्यादा जोर दिया है–

(क) आदर्शवाद (ख) सत्ता

(ग) शक्ति (घ) द्वनद्ववाद

## 1.7. बहुविकल्पीय प्रश्नों का उत्तर :

उ01. (क) कोजर

उ02. (क) डेविड ईस्टन

उ03. (स) डाहरेनडार्फ

उ04. (क) एस.पी. वर्मा

उ05. (क) आदर्शवाद

## 1.8. अभ्यास प्रश्न :

**दीर्घउत्तरीय प्रश्न :**



Scanned with CamScanner

प्र01. राजनीतिक समाजशास्त्र के अर्थ व विषय क्षेत्र की विवेचना कीजिये।

प्र02. राजनीतिक समाजशास्त्र के अध्ययन के विविध उपागमों की विवेचना कीजिये।

**<u>लघुउत्तरीय प्रश्न</u> :**

प्र01. राजनीतिक समाजशास्त्र की विषयवस्तु की विवेचना कीजिये?

प्र02. राजनीतिक समाजशास्त्र की दो परिभाषायें बताइयें?

प्र03. राजनीतिक व्यवस्था व समाज के अन्तर्सम्बन्धों को विश्लेषित कीजिये?

## 1.9. संदर्भ सूची :


1. मिचेल, बी.डी. (1978), पॉलिटिकल सोशियोलॉजी, लंदन।
2. बविस्कर, बी.एस. (1974), सोशियोलॉजी ऑफ पॉलिटिकल, पापुलर प्रकाशन, बम्बई।
3. होरोविट्स ई.वी. (1972), फाउन्डेशन्स ऑफ पॉलिटिकल, सोशियोलॉजी, हार्पर एण्ड रो पब्लिशर्स, न्यूयार्क।
4. ईस्टन, डेविड (1965), दि. करंट मीनिंग ऑफ बिहेवियरलिज्म, दि फ्री प्रेस, न्यूयार्क।
5. युलाड, एच. सेम्युअल जे. ऐल्डर्वेल्ड एण्ड मोरिस जेनोविट्स (संपादित), (1972), पॉलिटिकल बिहेवियर–ए–रीडर इन थ्योरी एण्ड रिसर्च, न्यू देहली, अमेरिंड, पब्लिशिंग हाऊस।




Scanned with CamScanner